कबीर साहित्य में सामाजिक चेतना का स्वरूप

(Nature of Social Consciousness in Kabir Literature)

प्रेम सागर भाटी

कबीर साहित्य में सामाजिक चेतना का स्वरूप

कबीर साहित्य में सामाजिक चेतना का स्वरूप

(Nature of Social Consciousness in Kabir Literature)

प्रेम सागर भाटी

भाषा प्रकाशन

नई दिल्ली - 110002

© प्रकाशक

I.S.B.N. : 978-81-323-5470-3

प्रथम संस्करण : 2021

भाषा प्रकाशन

22, प्रकाशदीप बिल्डिंग, अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली – 110002

द्वारा वर्ल्ड टेक्नोलॉजीज नई दिल्ली के सहयोग से प्रकाशित

प्रस्तावना

कबीर की सामाजिक चेतना के संदर्भ में पहली धारणा ये बनती है कि वे समाज सुधारक थे। वस्तुतः कबीर बाह्याडम्बर, मिथ्याचार एवं कर्मकांड के विरोधी थे, परन्तु सामाजिक मान्यताओं का विरोध करते समय वे सर्व-निषेधात्मक मुद्रा कभी नहीं अपनाते थे। कबीर अपने समय में प्रचलित हठयोग की साधना, वैष्णव मत, इस्लाम तथा अनेक प्रकार की साधना पद्धतियों से परिचित थे। उन्होंने सबकी आलोचना की, किन्तु उनका सारतत्त्व समाहित किया। एक भक्त के रूप में उन्होंने शुष्क ज्ञान साधना से आगे बढ़कर संसार के साथ भावनात्मक संबंध स्थापित किया। उन्हें मानव समाज की विषमाताओं से पीड़ित होने और समाज को उबारने की छटपटाहट भी प्रदान की। कबीर की सामाजिक चेतना उनकी भक्ति भावना का ही एक पक्ष है।

कबीर की सामाजिक चेतना का श्रेय उन युगीन परिस्थितियों को है, जिनके बीच वे पैदा हुए और रहे। वे परिस्थितियाँ जीवन के सभी क्षेत्रों में भयावह अव्यवस्था, विषमता और अंधविश्वास की परिस्थितियाँ थी। पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार कबीर ने ऐसी बहुत सी बातें कही हैं, जिन्हें अगर उपयोग किया जाये तो समाज-सुधार में सहायता मिल सकती है, पर इसीलिए उनको समाज-सुधारक समझना गलती है। वस्तुतः वे व्यक्तिगत साधना के प्रचारक थे। कबीर एक आध्यात्मिक पुरूष थे। उनका सारा जीवन ईश्वर की उपासना में बीता था। भक्ति समझ लाती है, सहानुभूति लाती है और तब आप दूसरे धर्म, दूसरी विचारधारा का हिस्सा बनते हैं। इसके अतिरिक्त स्वयं उनके जैसा नहीं बन जाते वरन् उस धर्म या विचारधारा के प्रति एक समझ पैदा करते हैं।

पुस्तक लेखन में कई लिखित व अलिखित स्रोतों से मदद ली गई है; मैं उन सभी विज्ञ लेखकों के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ। आशा करता हूँ कि पुस्तक पाठकों के लिए उपयोगी होगी।

–लेखक

अनुक्रम

प्रस्तावना *v*

1. **कबीरदास** **1**

महात्मा कबीर का जन्म-काल 9

जन्म स्थान 10

कबीर के माता-पिता 11

स्त्री और संतान 11

कबीर के जीवन से संबंधित कुछ चमत्कारी घटनाएँ 12

काजी का नाम धरने आना 14

कबीर की बाल-लीला 16

कबीर साहब की सुन्नत 17

कुर्बानी 18

कबीर साहब को नीरु के घर से भगाने का प्रयत्न 18

कबीर वचन 24

कबीर साहब को गुरु के समान मानना 25

कबीर साहित्य 25

कबीर का प्रेम 42

कबीर का व्यक्तित्त्व 45

2. **कबीर का साहित्यिक परिचय** **47**

साखी 49

चौंतीसा 53

बावनी 53
विप्रमतीसी 54
वार 54
बसंत 55
हिंडोला 55
कहरा 56
बिरहुली 56
उलटवाँसी 57
धर्म विरोध संबंधी उलटवाँसिया 57
3. कबीर की प्रेम साधना 58
कबीर भक्ति की साधना 59
4. कबीर की साखी 61
5. कबीर की सामाजिक चेतना 102
कबीर की सामाजिक चेतना के आयाम 105
कबीर की समाज संबंधी विचारधारा 113
6. कबीर की भक्ति 123
कहां कबीर कहां हम 126
माध्यम मार्ग का अनुसरण 135
7. संत कबीर के दार्शनिक विचार 136
ब्रह्म 136
जीव 138
8. कबीर की भाषा शैली 140
भाषा और शैली 140
पंचमेल खिचड़ी भाषा 141
रूपातीत व्यंजना और खंडन मंडन 142
कबीरदास का भक्त रूप 143
9. कबीर की रचनाएँ 145
बीजक 146
कबीर रचनावली 146
अवधू और अवधूत 147

कबीर के दोहे 149
10. कबीर के दोहे 150
11. कबीर कालीन राजनैतिक परिस्थितियाँ 160
तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति 164
12. कबीर ग्रंथावली 166
ग्रंथावली का संपादन 166
रामकिशोर शर्मा का कथन 167
13. बीजक 169
मौखिक उपदेश 169
बीजक मूल ग्रंथ 170
बीजक का मुद्रण 171
बीजक पदों का गूढ़त्व और सूत्रत्व 171
बीजक की अनेक टीकाएँ 172

1

कबीरदास

कबीर का जीवन-वृत्त अनेक दैवी कल्पनाओं, संभावनाओं एवं लोक गल्पों पर आधारित है। जिन सूत्रों से कबीर के जीवन-वृत्त को गढ़ा गया है, वे अविश्वसनीय अधिक, विश्वसनीय कम हैं। जब कोई अतिशय प्रतिभाशाली अलौकिक व्यक्तित्त्व अवतरित होता है तो कार्य-कारण की सामान्य शृंखला टूटती-बिखरती नजर आती है। सामान्य मनुष्य को उस व्यक्ति के विषय में बहुत कुछ नये तरीके से सोचने-समझने के लिए विवश होना पड़ता है, यही विवशता तरह-तरह के अनुमानों एवं अटकलों को जन्म देती है। वास्तविकता को आवृत्त करके अनुमान एवं अटकलें ही प्रमुख प्रमाण बन जाती है। कबीरदास के जन्म-स्थान, माता-पिता, परिवार, जाति, संप्रदाय आदि के विषय में परस्पर विरोधी निष्कर्ष उपर्युक्त कारणों से ही निकाले गये। कुछ मान्यताएँ जो शताब्दियों के प्रचलन के कारण रूढ़ होकर सत्य प्रतीत होने लगती है। सामान्य जन आस्था उन्हें स्वीकार कर लेती है। विद्वत् समाज भी किसी पुष्ट एवं विश्वसनीय विकल्प के अभाव में लोक आस्था से ही जुड़ जाता है। बीच-बीच में ऐसे भी स्वर उभरते हैं, जो बड़ी बेरहमी से उस आस्था पर प्रहार करते हैं। भले ही वह आस्था टूटे या न टूटे, लेकिन प्रहार करने वाला अपनी कोशिश तक हर्षित अवश्य होता है।

कबीर के विषय में अपना मत प्रस्तुत करने वाले न तो गतानुगतकों की कमी है और न क्रांतिकारियों की। ऐसी परिस्थिति में यदि हम यही कहें कि 'कबीर जैसा है तैसा रहै, तू बानी के गुन गाय'-यह पंक्ति कबीर की उस उक्ति की नकल पर रची गयी है, जिसमें कबीर ने कहा है कि 'हरि जैसा तैसा रहै,

तू हरषि-हरषि गुन गाय।' कबीर का जन्म स्थान का श्रेय चाहे जिस गाँव, नगर, प्रदेश, देश को दिया जाए, उनकी जाति-पाँति का चाहे जो निर्धारण किया जाए लेकिन कबीर की सृजनशीलता के विविध पक्षों का जो रूप एवं जो महत्त्व हमारे सामने है उसको न तो न्यून किया जा सकता है, और न ही उसे नकारा जा सकता है, जो साधक जीवन-पर्यन्त जाति-पाँति, देश-काल की सीमाओं के विरुद्ध संघर्षरत रहा है, उसकी उन्हीं सीमाओं की तलाश, अपने आप में कितनी सार्थक होगी। फिर भी एक महान् रचनाकार के जीवन-सूत्रों और उसके सृजनात्मक परिवेश के अन्वेषण को नितान्त महत्त्वहीन भी नहीं कहा जा सकता।

कबीरदास के जन्म और उद्बोधन दोनों प्रसंगों से रामानन्द का नाम जुड़ा हुआ है। इसे संयोग या दुर्योग ही कहा जाएगा कि रामानन्द जन्म से ब्राह्मण होते हुए भी दक्षिण भारत से उमड़ने वाले भक्ति आन्दोलन के हिन्दी-प्रदेश के प्रथम ग्राहक थे, जिसमें शूद्रों एवं स्त्रियों के मुक्त होने का उपाय निहित था, जिन्हें तथाकथित ब्राह्मणों ने (जैसा कि सभी का आरोप है) वेद मार्ग से वंचित कर रखा था। रामानन्द के जिन बारह शिष्यों का उल्लेख भक्तमाल में मिलता है, उनमें अनेक जाति-धर्म के लोग थे, ऐसी स्थिति में रामानन्द का शिष्य बनने के लिए कबीर को विशेष युक्ति का सहारा लेना पड़ा हो, यह विश्वसनीय नहीं लगता। कबीर ने यद्यपि एक जगह कहा है-'काशी में हम प्रकट भये हैं रामानन्द चेताए' लेकिन इस उक्ति को विद्वान् को आलोचकों ने प्रामाणिक नहीं माना है कि कबीर के गुरु रामानन्द थे।

कबीर के जन्म के सम्बन्ध में ऐसी लोक मान्यता है कि कबीर का जन्म रामानन्द के आशीर्वाद से एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से हुआ था, किन्तु उक्त ब्राह्मणी ने लोक-लज्जा वश काशी के पास लहरतारा नामक स्थान पर नवजात शिशु को फेंक दिया और संयोगवश उसी मार्ग से अली या नी–नीमा नाम के जुलाहे गुजर रहे थे कि नवजात शिशु पर दृष्टि पड़ गयी और उसे घर ले आये, उसका पालन-पोषण किया और शिशु का नाम कबीर रखा। असाधारण परिस्थितियों में जन्मे कबीर के जन्म के विषय में, जो लोक कथा प्रचलित है वह कबीर का संबंध किसी न किसी रूप में ब्राह्मण-वंश से जोड़ती है। आशीर्वाद की बात तो बहुत वैज्ञानिक नहीं प्रतीत होती, किन्तु विधवा ब्राह्मणी के रूप-सौन्दर्य पर कोई महात्मा रीझ गया होगा और उसी के दैहिक संपर्क के फलस्वरूप बालक का जन्म हुआ होगा। यह महात्मा रामानंद से कोई भिन्न व्यक्ति रहा होगा। रामानन्द के आशीर्वाद की बात बाद में कल्पित कर ली गई।

कबीर ने अपने माता-पिता के नाम का उल्लेख नहीं किया है, किन्तु ऐसा माना जाता है कि कबीर के पिता एक बड़े गोसाईं थे-'पिता हमारो बड़ गोसाईं। तिसु पिता पहिहउं किंउ करि जाई।' लेकिन उक्त पद का अर्थ है कि मेरा पिता सबसे बड़ा स्वामी (बड़ा गोसाई) अर्थात् जगतपिता है। ऐसे पिता के नजदीक मैं कैसे जाने की हिम्मत कर सकता हूँ। स्पष्ट है कि उक्त बात कबीर ने अपने निर्गुण ब्रह्म के लिए ही कहा है। अतः कबीर के पिता गोसाईं नहीं हो सकते। 'रामानंद दिग्विजय' ग्रंथ में लिखा है कि कोई आकाशगामी देवता अपनी प्रियतमा की पीड़ा से व्यथित था। उसका वीर्य स्खलन काशी के लहरतारा तालाब के एक कमल के पत्ते पर हुआ, जिससे एक बालक हो गया। एक अन्य विचार के अनुसार कबीर के वास्तविक पिता का नाम स्वामी अष्टानन्द था, जिन्होंने कबीर की ज्योति का दर्शन सर्वप्रथम किया था और इन्होंने इसकी सूचना रामानन्द को दी थी, परन्तु हिन्दू प्रथाओं के भय से कबीर की माता को उन्होंने पत्नी रूप में स्वीकार नहीं किया।

नाभादास ने अपने भक्तमाल में दो छप्पयों में कबीर के विषय में कुछ सूचनाएँ दी हैं। प्रथम छप्पय में कबीरदास की वाणी की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है। जैसे उनके द्वारा स्थापित भक्ति की विशिष्टता, योग, यज्ञ, व्रत और दान की तुच्छता। हिन्दू और तुर्क दोनों के प्रमाण हेतु रमैनी, सबदी और साखी की रचना, वर्णाश्रम धर्म की उपेक्षा आदि। साथ ही रामानन्द के शिष्यों में कबीर की भी परिगणना की गई है 'कबीरदास' का जन्म सन 1398 ई0 में काशी में हुआ था। कबीर के जन्म के संबंध में अनेक किंवदन्तियाँ हैं। इनके जन्म के विषय में यह प्रचलित है कि इनका जन्म स्वामी रामानन्द के आशीर्वाद से एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से हुआ था, जो लोक-लाज के दर से इन्हें 'लहरतारा' नामक तालाब के पास फेंक आई। संयोगवश नीरू और नीमा नामक जुलाहा दम्पति को ये मिले और उन्होंने इनका पालन-पोषण किया।

भूमिका-विश्व एक ऐसा रंगस्थल है, जहाँ अनेक जीवधारी अपने जीवन का आरम्भ करते है और अन्ततः मृत्यु के बाद जीवन-यात्रा का विश्राम प्राप्त कर लेते हैं। लेकिन कुछ ऐसे भी व्यक्ति होते हैं, जो अपने महत् कर्मों से अपने शरीर के नष्ट हो जाने पर भी अमर रहते हैं। विश्व उन्हें स्मरण करता है। हिन्दी साहित्य में कबीर ऐसे ही अद्भुत व्यक्तित्त्व सम्पन्न कवि हुए हैं, जिन्होंने अपनी साहित्य-साधना के माध्यम से अमरत्व प्राप्त कर लिया है। उनके जीवन, जाति

और धर्म के संबंध में यद्यपि विवाद है पर कबीर अपने कार्यों से एक जाति के नहीं, एक धर्म के नहीं सभी जाति और धर्म के मार्ग दर्शक बने हैं।

कबीर का जीवन एवं साहित्यिक परिचय-कबीर का जन्म संवत् 1456 वि. (1399 ई.) में माना जाता है-

चौदह सौ छप्पन साल गए, चन्द्रवार एक ठाठ भए।
जेठसुदी बरसाइत को, पूरनमासी प्रकट भए।

कबीर के जन्म के सम्बन्ध में एक किवंदती प्रचलति है। कहा जाता है कि एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से कबीर का जन्म हुआ। वह विधवा ब्राह्मणी गुरू रामानन्द जी के पास गई और उन्होंने उसे अनजाने में ही पुत्रवती होने का आर्शीवाद दिया। शिशु का जन्म हो जाने पर वह ब्राह्मणी उसे लोक-लाज के कारण लहरतारा तालाब के किनारे छेड़ आई। यह शिशु नीमा और नीरु नामक जुलाहा दम्पति को मिला और वे उसे अपने घर ले आए। इन्होंने ही कबीर का पालन-पोषण किया। कबीर की शिक्षा-दीक्षा का कोई विशेष प्रबंध नहीं था। उन्होंने स्वयं भी लिखा है-

मसि कागद छुओ नहीं, कलम गही नहिं हाथ॥

कबीर के गुरु के सम्बन्ध में भी निश्चय रूप में कुछ नहीं कहा जा सकता है। रामानन्द तथा शेखतकी को इनके गुरु के रूप में माना जाता है ? कबीर ने लिखा है-

काशी में हम प्रकट भए, रामानन्द चेताए।

रामानन्द से उनकी दीक्षा ग्रहण करने के सम्बन्ध में भी एक किवदंती प्रसिद्ध है। अंधेरे में जब रामानन्द नहाने के लिए गए तो मार्ग में कबीर लेट गए और रामानन्द का पाँव उनके ऊपर पड़ गया। उनके मुख से 'राम-राम' निकाला और कबीर ने इसे गुरु मंत्र मान लिया। कुछ विद्वानों का विचार है कि लोई नामक स्त्री से कबीर की शादी हुई थी तथा उनके कमाल और कमाली नामक पुत्र और पुत्री भी पैदा हुई। कबीर जुलाहे का कार्य करते और प्रभु की। भक्ति में भी लीन रहते थे। उनका जीवन सादा, सच्चा और भक्तिमय था। मृत्यु के समय कबीर अन्धविश्वासों पर कड़ा प्रहार करने के लिए स्वयं ही मगहर में चले गए जहां उन्होंने अपना शरीर त्याग दिया।

मरति बार मगहर उठि धाया।

कबीर की मृत्यु के सम्बन्ध में यह दोहा भी प्रसिद्ध है-

संवत पन्द्रह सौ पछतर, कियो मगहर को मौन।
माघ सुदी एकादशी, रलों पौन में पौन॥

कबीर की सभी रचनाएं 'बीजक' में संगृहीत है। बीजक के तीन भाग हैं–साखी, सबद, तथा रमैणी। साखी दोहा छन्द में लिखी गई हैं।

कबीर का जन्म ऐसे समय में हुआ था जब समाज में अज्ञान, अन्धकार, अविश्वास अन्धविश्वास, आडम्बर, जाति–पांति, रूढ़ियों के कीचड़ में धंसा हुआ था। राजनीतिक तथा धार्मिक दृष्टि से यह युग अशान्ति का युग था, पतन का युग था। कबीर ने अपने युग को देखा, परखा और तब उसके मार्ग–दर्शक करने का प्रयास किया।

कबीर के काव्य का भाव पक्ष–वास्तव में कबीर का लक्ष्य कविता करना नहीं था, अपितु अपनी आत्मा की आवाज को वे समाज तक पहुँचाना चाहते थे। दीपक की भान्ति जलकर वे समाज को प्रकाश देना चाहते थे। कबीर का व्यक्तित्त्व क्रान्तिकारी था। वे एक ओर बहुत ही कठोर प्रकृति के थे, तर्कशील थे दूसरी ओर अत्यंत कोमल और भावुक थे। वे निडर तथा निर्भीक थे, जो कुछ वे कहना चाहते उसे सीधे शब्दों में प्रकट कर देते थे। कबीर के काव्य का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है उसका विषय मूल रूप से भक्ति और सामाजिक चिंतन है। उनके भक्ति चिंतन में ही उनके दार्शनिक विचार उपलब्ध होते हैं। उनका सामाजिक चिंतन अनेक मुखी है और अपने समाज में व्याप्त अनेक सामाजिक समस्याओं का उन्होंने विरोध किया है। इसके लिए उन्होंने हिन्दु और मुसलमान दोनों को ही फटकारा और दोनों की कुप्रथाओं पर कुठाराघात किया। हिन्दुओं में व्याप्त मूर्ति–पूजा, तत्र–मंत्र, माला, जप, छापा–तिलक, व्रत तीर्थ आदि को उन्होंने व्यर्थ बताया है।

जन्त्र मन्त्र सब झूठ है, मत भरमा जग कोय।
सार शब्द जाने बिना, कागा हंस न होई ॥

जप माला छापा तिलक सरै न एको काम।
मन कांचे नाचे वृथा, सांचे रांचे राम ॥

पाहन पूजे हरि मिले, तो मैं पूजूँ पहार।
ताते यह चाकी भली, पीसी खाय संसार॥

माला फेरत जुग भया, फिरा न मनका फेर।
करका मनका डारे दे, मन का मनका फेर ॥

हिन्दुओं की भांति उन्होंने मुसलमानों को भी डांटा-फटकारा और उनमें व्याप्त रूढ़ियों का पर्दाफाश किया। मस्जिद की अजांन रोजा, नमाज, खतना, मांस-भक्षण 6 का विरोध उन्होंने स्पष्ट रूप में किया। उनकी तीखी वाणी पर सत्य कथन के विरोध में किसी की तक करने की शक्ति नहीं थी।

कांकरि पाथरि जोरि के, मस्जिद लई बनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बांग दे, क्या बहिरा हुआ खदाय॥

दिन भर रोजा रखत हैं, रात हुनत है गाय।
यह खून, वह बन्दगी, कैसे खुशी खुदाय ॥

मुसलमानों की हिंसा, हिन्दुओं की छुआछूत और सांप्रदायिक भावना का विरोध वे प्रखर स्वर में करते हैं और दोनों को सही मार्ग दिखाने का प्रयास करते हैं

एक बून्द एकै मलमूतर, एक चाम एक गूदा।
एक जाति है सब उपजाना, को बामन को सूदा ॥

अरे इन दोऊन राह न पाई।
हिन्दुअन की हिन्दुआई देखी, तुरकन की तुरकाई॥

इस प्रकार कबीर का सामाजिक पक्ष मानव मात्र के कल्याण की भावना से युक्त है। वास्तव में कबीर क्रान्तिकारी और निर्मीक व्यक्तित्त्व के चिंतक थे। उनका चिंतन सुधारवादी तथा मानवतावादी था इसलिए उनका स्वर अत्यंत प्रखर हो गया था। उनके काव्य का दूसरा पक्ष अत्यंत कोमल तथा प्रेम रस से भीगा हुआ है। उनकी भावनाओं का आवेग, वाणी की कातरता, दीन-हीन पुकार निरीहता उनके प्रभु को भी करुणा से भर देती है। विरहिणी के रूप में अपने प्रियतम से बिछुड़ने पर उनकी विरह-भावना अत्यंत करुणा जनक बनती है तथा उसमें वेदना के स्वर अत्यंत प्रबल हो जाते हैं। ऐसे स्थलों पर कबीर का रहस्यवाद अत्यन्त भावात्मक हो उठता है।

कै बिरहन को मीच दे, के आपा दिखराए।
आठ पहर का दानां, मो पै सहो न जाए।

आई सकें न तुझ पे, सकू न तुझे बुलाय।
जियरा यों ही लेगे, विरह तपाई तपाई ॥

ईश्वर के सम्बन्ध में उनकी स्पष्ट धारणा है कि वह संसार में सर्वत्र व्याप्त है तथा कण-कण में विद्यमान है। माया के कारण ही वह हमें नजर नहीं आता है। उनका चिंतन, जीव, जगत, माया, ब्रह्म आदि दार्शनिक तत्त्वों को सरल और सीधी भाषा में स्पष्ट करता है। ईश्वर की उपस्थिति उनके ही शब्दों में इस प्रकार समझी जा सकती है

ज्यों तिल मांहि तेल है, ज्यों चकमक में आगि।।
तेरा साई तुझ में, जागि सके तो जागि ।।

आत्मा और परमात्मा के मिलन की स्थिति उसी स्थिति में संभव है जबकि अज्ञान और या का परदा उठ जाता है। कुंभ और तालाब के जल के बीच में जब तक मिट्टी की दीवार है तब तक उनका मिलना संभव ही नहीं है। घड़े की दीवार टूटते ही दोनों में अभेद की अति उत्पन्न हो जाती है। कबीर ने आत्मा को पत्नी तथा परमात्मा को पति का रूप देकर अत्यंत समर्थ प्रतीकों के द्वारा दोनों के मधुर मिलन का रूपक खींचा है।

दुलहनि गाबहु मंगलाचार।
हम घर आयहु राजा राम भरतार।।

निगुर्ण के उपासक कबीर के राम दशरथ के पुत्र राम न होकर उस ब्रह्म के प्रतीक है। जिसके लिए उन्होंने अनेक शब्दों का और प्रतीकों का प्रयोग किया है।

कबीर के काव्य का मूल्यांकन—महात्मा कबीर की सरल और पवित्र, जनहित कामना से प्रेरित वाणी, जो काव्य रूप में प्रस्फुटित हुई है का मूल्यांकन कलावादी दृष्टि से करना सर्वथा ही असंगत है। कबीर मूल रूप से भक्त और सरल हृदय मानव मात्र के प्रेमी थे अतः उन्हें मनुष्य को गुमराह करने वाले अन्धकार में भटकाने वाले धर्म से घृणा थी। यही उनके काव्य की सबसे बड़ी विशेषता है। उनकी भाषा सधुक्कड़ी पंचमेल खिचड़ी थी। जिस प्रदेश में, स्थान में वे भ्रमण करते थे वहां के ही लोक प्रचलित शब्दों को अपने भावों के अनुकूल वे स्वयं बना लेते थे। इसीलिए उन्होंने शब्दों को तोड़ा-मरोड़ा है। ब्रज, अवधी, राजस्थानी, भोजपुरी, पंजाबी, खड़ी बोली, संस्कृत आदि भाषाओं के शब्दों का उन्होंने प्रयोग किया है। कबीर की अनुभूति को प्रकट करने के लिए, जो प्रतीक उनके काव्य में प्रयोग हुए हैं वे निश्चय ही अत्यन्त सजीव एवं मार्मिक है। उनके ये प्रतीक दैनिक जीवन से ही लिए गए हैं। अलंकारों के प्रति उनका कोई

आकर्षण नहीं था, लेकिन अलंकार उनकी कविता में स्वयं ही आ गए है और वे आरोपित नहीं लगते हैं। रस की दृष्टि सेश्रृंगार और शान्त रस ही उनके काव्य के प्रधान रस हैं। कबीर काव्य का मूल्यांकन वस्तुतः उसके भाववादी दृष्टिकोण से मानवतावादी दृष्टिकोण से ही किया जा सकता है।

उपसंहार–मध्यकालीन संत और भक्त कवियों में महात्मा कबीर की अपनी ही पहचान है और उनकी कविता की गंगा मानव के हित के लिए ही प्रवाहित हुई है। उनकी भक्ति एकांतिक भक्ति नहीं है। उनकी भक्ति में भी सरलता और पवित्रता है। उनका काव्य प्रेम और ज्ञान का दीपक है, उसमें विश्वबन्धुत्व की भावना है, तथा मानवतावाद का पोषण है। समन्वयवादी कबीर का हृदय संत हृदय था जो नवनीत से भी कोमल था।

कबीर की शिक्षा–दीक्षा का अच्छा प्रबंध न हो सका। ये अनपढ़ ही रहे। इनका काम कपड़े बुनना था। ये जुलाहे का काम करते थे परन्तु साथ ही साथ साधु संगति और ईश्वर के भजन चिंतन में भी लगे रहते थे। इनका विवाह 'लोई' नामक स्त्री से हुआ था। इनके 'कमाल' नामक एक पुत्र और 'कमाली' नामक एक पुत्री थी।

कबीरदास ने अपना सारा जीवन ज्ञान देशाटन और साधु संगति से प्राप्त किया। ये पढ़े–लिखे नहीं थे, परन्तु दूर–दूर के प्रदेशों की यात्रा कर साधु–संतों की संगति में बैठकर सम्पूर्ण धर्मों तथा समाज का गहरा अध्ययन किया। अपने इस अनुभव को इन्होने मौखिक रूप से कविता में लोगों को सुनाया।

कबीरदास का जन्म ऐसे समय में हुआ था जब कि हमारे देश में चारों तरफ अशांति और अव्यवस्था का बोलबाला था। विदेशी आक्रमणों से देश की जनता पस्त थी। अनेक धर्म और मत–मतान्तर समाज में प्रचलित थे। आर्थिक दशा बड़ी दयनीय थी। ऐसे कठिन समय में जन्म लेकर इस युग दृष्टा महान संत ने देश की जनता को एक नया ज्ञान का ज्योतिर्मय मार्ग दिखाया।

कबीरदास निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे। उनका मत था कि ईश्वर समस्त संसार में व्याप्त है। उन्होंने ब्रह्म के लिए राम, हरि आदि शब्दों का प्रयोग किया परन्तु वे सब ब्रह्म के ही पर्यायवाची हैं। उनका मार्ग ज्ञान मार्ग था। इसमें गुरु का महत्त्व सर्वोपरि है। कबीर स्वच्छंद विचारक थे। उन्होंने समाज में व्याप्त समस्त रूढ़ियों और आडम्बरों का विरोध किया।

कबीरदास की मृत्यु स्थान के विषय में भी लोगों में मतभेद है। भिन्न–भिन्न लोग पुरी, मगहर और रतनपुर (अवध) में इनकी मृत्यु हुई मानते

हैं, परन्तु अधिकाँश विद्वान मगहर को ही इनका मृत्यु स्थान मानने के पक्ष में हैं। इनकी मृत्यु सन 1495 ई0 के लगभग मानी जाती है।

कबीदास की रचनाओं को उनकी मृत्यु के बाद उनके पुत्र तथा शिष्यों ने 'बीजक' के नाम से संग्रहीत किया। इस बीजक के तीन भाग हैं-(1) सबद (2) साखी (3) रमैनी। बाद में इनकी रचनाओं को 'कबीर ग्रंथावली' के नाम से संग्रहीत किया गया। कबीर की भाषा में ब्रज, अवधी, पंजाबी, राजस्थानी और अरबी फारसी के शब्दों का मेल देखा जा सकता है। उनकी शैली उपदेशात्मक शैली है।

कबीर हिंदी साहित्य के महिमामण्डित व्यक्तित्त्व हैं। उन्होंने हिन्दू मुस्लिम एकता का निरंतर प्रयास किया। हिंदी साहित्य जगत में उनका विशिष्ट स्थान है। अशिक्षित होते हुए भी उन्होंने जनता पर जितना गहरा प्रभाव डाला है, उतना बड़े-बड़े विद्वान भी नहीं डाल सके हैं। वे सच्चे अर्थों में समाज सुधारक थे।

महात्मा कबीर का जन्म-काल

महात्मा कबीर का जन्म ऐसे समय में हुआ, जब भारतीय समाज और धर्म का स्वरुप अधंकारमय हो रहा था। भारत की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक अवस्थाएँ सोचनीय हो गयी थी। एक तरफ मुसलमान शासकों की धर्मांधता से जनता त्रहि-त्रहि कर रही थी और दूसरी तरफ हिंदूओं के कर्मकांडों, विधानों एवं पाखंडों से धर्म-बल का ह्रास हो रहा था। जनता के भीतर भक्ति-भावनाओं का सम्यक प्रचार नहीं हो रहा था। सिद्धों के पाखंडपूर्ण वचन, समाज में वासना को प्रश्रय दे रहे थे।

नाथपंथियों के अलखनिरंजन में लोगों का ऋदय रम नहीं रहा था। ज्ञान और भक्ति दोनों तत्त्व केवल ऊपर के कुछ धनी-मनी, पढ़े-लिखे की बपौती के रुप में दिखाई दे रहा था। ऐसे नाजुक समय में एक बड़े एवं भारी समन्वयकारी महात्मा की आवश्यकता समाज को थी, जो राम और रहीम के नाम पर आज्ञानतावश लड़ने वाले लोगों को सच्चा रास्ता दिखा सके। ऐसे ही संघर्ष के समय में, मस्तमौला कबीर का प्रार्दुभाव हुआ।

जन्म

महात्मा कबीर के जन्म के विषय में भिन्न-भिन्न मत हैं। 'कबीर कसौटी' में इनका जन्म संवत् 1455 दिया गया है। 'भक्ति-सुधा-बिंदु-स्वाद'' में इनका

जन्मकाल संवत् 1451 से संवत् 1552 के बीच माना गया है। ''कबीर-चरित्र-बाँध'' में इसकी चर्चा कुछ इस तरह की गई है, संवत् चौदह सौ पचपन (1455) विक्रमी ज्येष्ठ सुदी पूर्णिमा सोमवार के दिन, एक प्रकाश रुप में सत्य पुरुष काशी के 'लहर तारा' (लहर तालाब) में उतरे। उस समय पृथ्वी और आकाश प्रकाशित हो गया। समस्त तालाब प्रकाश से जगमगा गया। हर तरफ प्रकाश-ही-प्रकाश दिखने लगा, फिर वह प्रकाश तालाब में ठहर गया। उस समय तालाब पर बैठे अष्टानंद वैष्णव आश्चर्यमय प्रकाश को देखकर आश्चर्य-चकित हो गये। लहर तालाब में महा-ज्योति फैल चुकी थी। अष्टानंद जी ने यह सारी बातें स्वामी रामानंद जी को बतलायी, तो स्वामी जी ने कहा की वह प्रकाश एक ऐसा प्रकाश है, जिसका फल शीघ्र ही तुमको देखने और सुनने को मिलेगा तथा देखना, उसकी धूम मच जाएगी।

एक दिन वह प्रकाश एक बालक के रुप में जल के ऊपर कमल-पुष्पों पर बच्चे के रुप में पाँव फेंकने लगा। इस प्रकार यह पुस्तक कबीर के जन्म की चर्चा इस प्रकार करता है –

'चौदह सौ पचपन गये, चंद्रवार, एक ठाट ठये।
जेठ सुदी बरसायत को पूनरमासी प्रकट भये।।'

जन्म स्थान

कबीर ने अपने को काशी का जुलाहा कहा है। कबीर पंथी के अनुसार उनका निवास स्थान काशी था। बाद में, कबीर एक समय काशी छोड़कर मगहर चले गए थे। ऐसा वह स्वयं कहते हैं –

'सकल जनम शिवपुरी गंवाया।
मरती बार मगहर उठि आया।।'

कहा जाता है कि कबीर का पूरा जीवन काशी में ही गुजरा, लेकिन वह मरने के समय मगहर चले गए थे। कबीर वहाँ जाकर दु:खी थे। वह न चाहकर भी, मगहर गए थे।

'अबकहु राम कवन गति मोरी।
तजीले बनारस मति भई मोरी।।'

कहा जाता है कि कबीर के शत्रुओं ने उनको मगहर जाने के लिए मजबूर किया था। वह चाहते थे कि आपकी मुक्ति न हो पाए, परंतु कबीर तो काशी मरन से नहीं, राम की भक्ति से मुक्ति पाना चाहते थे –

'जौ काशी तन तजै कबीरा
तो रामै कौन निहोटा।'

कबीर के माता-पिता

कबीर के माता-पिता के विषय में भी एक राय निश्चित नहीं है। 'नीमा' और 'नीरु' की कोख से यह अनुपम ज्योति पैदा हुई थी या लहर तालाब के समीप विधवा ब्राह्मणी की पाप-संतान के रुप में आकर यह पतितपावन हुए थे, ठीक तरह से कहा नहीं जा सकता है। कई मत यह है कि नीमा और नीरु ने केवल इनका पालन-पोषण ही किया था। एक किवदंती के अनुसार कबीर को एक विधवा ब्राह्मणी का पुत्र बताया जाता है, जिसको भूल से रामानंद जी ने पुत्रवती होने का आशीर्वाद दे दिया था।

एक जगह कबीर ने कहा है –

'जाति जुलाहा नाम कबीरा
बनि बनि फिरो उदासी।'

कबीर के एक पद से प्रतीत होता है कि वे अपनी माता की मृत्यु से बहुत दु:खी हुए थे। उनके पिता ने उनको बहुत सुख दिया था। वह एक जगह कहते हैं कि उसके पिता बहुत 'गुसाई' थे। ग्रंथ साहब के एक पद से विदित होता है कि कबीर अपने वयनकार्य की उपेक्षा करके हरिनाम के रस में ही लीन रहते थे। उनकी माता को नित्य कोश घड़ा लेकर लीपना पड़ता था। जबसे कबीर ने माला ली थी, उसकी माता को कभी सुख नहीं मिला। इस कारण वह बहुत खीज गई थी। इससे यह बात सामने आती है कि उनकी भक्ति एवं संत-संस्कार के कारण उनकी माता को कष्ट था।

स्त्री और संतान

कबीर का विवाह वनखेड़ी बैरागी की पालिता कन्या 'लोई' के साथ हुआ था। कबीर को कमाल और कमाली नाम की दो संतान भी थी। ग्रंथ साहब के एक 'लोक से विदित होता है कि कबीर का पुत्र कमाल उनके मत का विरोधी था।

बूड़ा बंस कबीर का, उपजा पूत कमाल।
हरि का सिमरन छोडि के, घर ले आया माल॥

कबीर की पुत्री कमाली का उल्लेख उनकी बानियों में कहीं नहीं मिलता है। कहा जाता है कि कबीर के घर में रात-दिन मुडियों का जमघट रहने से बच्चों

को रोटी तक मिलना कठिन हो गया था। इस कारण से कबीर की पत्नी झुंझला उठती थी। एक जगह कबीर उसको समझाते हैं –

सुनि अंघली लोई बंपीर।
इन मुड़ियन भजि सरन कबीर।।

जबकि कबीर को कबीर पंथ में, बाल-ब्रह्मचारी और विराणी माना जाता है। इस पंथ के अनुसार कामात्य उसका शिष्य था और कमाली तथा लोई उनकी शिष्या। लोई शब्द का प्रयोग कबीर ने एक जगह कंबल के रुप में भी किया है। वस्तुतः कबीर की पत्नी और संतान दोनों थे। एक जगह लोई को पुकार कर कबीर कहते हैं –

'कहत कबीर सुनहु रे लोई।
हरि बिन राखन हार न कोई।।'

यह हो सकता हो कि पहले लोई पत्नी होगी, बाद में कबीर ने इसे शिष्या बना लिया हो। उन्होंने स्पष्ट कहा है –

'नारी तो हम भी करी, पाया नहीं विचार।
जब जानी तब परिहरि, नारी महा विकार।।'

कबीर के जीवन से संबंधित कुछ चमत्कारी घटनाएँ

नीमा और नीरु का बालक कबीर का मिलना

नीरु जुलाहा काशी नगरी में रहता था। एक दिन नीरु अपना गवना लेने के लिए, ससुराल गया। नीरु अपनी पत्नी नीमा को लेकर आ रहा था। रास्ते में नीमा को प्यास लगी। वे लोग पानी पीने के लिए लहर तालाब पर गए। पानी पीने के पश्चात्, नीमा जैसे ही उठी, उसने तालाब में कमल के पुष्पों पर एक अति सुंदर बालक को हाथ-पाँव मारते देखा। वह बहुत ही प्रसन्न हुई। वह तालाब के भीतर गई और बालक को अपनी गोद में लेकर बाहर आकर, नीरु के निकट गई और कहा –

'नीरु नाम जुलाहा, गमन लिये घर जाय।
तासु नारि बढ श्रागिनी, जल में बालक पाय।'

जुलाहे ने बालक को देखकर पूछा, यह किसका है और तुम कहाँ से उठाकर लाई हो ? नीमा ने कहा कि इसे उसने तालाब में पाया है। नीरु ने कहा, इसे जहाँ से लायी है, वहीं रख आ। मगर नीमा ने कहा कि इतने सुंदर बच्चे

को मैं अपने पास रखुँगी। नीरु ने अपनी स्त्री से कहा, मुझपर लोग हँसेंगे, कहेंगे कि गवना में मैं अपनी स्त्री के साथ, बालक ले आया। नीरु को तत्कालीन समाज के लोगों का डर लग रहा था। उसने कहा –

'नीरु देख रिसवाई, बालक देतू डार।
सब कुटम्ब हांसी करे, हांसी मारे परिवार।'

नीमा, नीरु की कोई बात मानने को तैयार नहीं हुई, तब नीरु उसको मारने-पीटने पर तत्पर हो गया और झिड़कियाँ देने लगा। नीमा अपनी जगह पर चुपचाप खड़ी सोच रही थी, इतने में बालक स्वयं ही बोल उठा,

'तब साहब हूँ कारिया, लेचल अपने धाम।
युक्ति संदेश सुनाई हौं, मैं आयो यही काम।
पूरब जनम तुम ब्राह्मन, सुरति बिसारी मौहि।
पिछली प्रीति के कारने, दरसन दीनो तोहि।'

हे नीमा ! मैं तुम्हारे पूर्व जन्म के प्रेम के कारण तुम्हारे पास आया हूँ। तुम मुझको मत फेंको और अपने घर ले चलो। यदि तुम मुझको अपने घर ले गयी, तो मैं तुमको आवागमन (जन्म-मरण) के झंझट से छुड़ा करके, मुक्त कर दूँगा। तुम्हारे सारे दुख व संताप मैं हर लूँगा।

बालक के इस प्रकार बोलने से, नीमा निर्भय हो गयी और अपने पति से नहीं

डरी। तब नीरु भी बालक को सुनकर कुछ नहीं बोला –

कर गहि बगि उठाइया, लीन्हों कंठ लगाया
नारि पुरुष दोउ हरषिया, रंक महा धन पाय।

वे दोनों प्रसन्नतापूर्वक बालक को लेकर अपने घर चले गए।

बालक का नामकरण करने ब्राह्मण का आना।

काशी के लोगों को जब मालूम हुआ कि नीरु अपनी पत्नी के साथ एक बालक भी लाया है, तो लोग जमा होकर हंसने लगे। नीरु ने तब बालक के बारे में सारी बातें सुनाई।

नीरु बालक का नाम धरवाने के लिए, ब्राह्मण के पास गया। जब ब्राह्मण अपना पत्र लिए नाम के बारे में विचार ही रहा था कि बालक ने कहा, ऐ ब्राह्मण ! मेरा नाम कबीर है। दूसरा नाम रखने की चिंता मत करो। यह बात सुनकर वहाँ इकट्ठा सभी लोग चकित हो गए। हर तरफ इस बात की चर्चा होने लगी कि नीरु के घर में एक बच्चा आया है, वह बातें करता है।

साखी – कासी उमगी गुल श्रया, मोमिनका का घर घेर।
कोई कहे ब्राह्मा विष्णु हे, कोई कह इंद्र कुबेर॥
कोई कहन वरुन धर्मराय हे, कोई कोइ कह इस,
सोलह कला सुमार गति, को कहे जगदीश॥

काजी का नाम धरने आना

ब्राह्मण के चले जाने पर, नीरु ने काजी को बुलाया और बालक का नाम रखने के लिए कहा। काजी, कुरान और दूसरी किताबें खोलकर बालक का नाम देखने लगा। कुरान में काजी को चार नाम मिले –कबीर, अकबर, किबरा और किबरिया। ये चारों नाम देखकर काजी अपने दांतों के तले उँगलियाँ दबाने लगा। वह हैरान होकर बार–बार कुरान खोलकर देखता था, लेकिन समस्त कुरान काजी को इन्हीं चार नामों से भरा दिखाई देता था। काजी के मन में अत्यंत संदेह उत्पन्न होने लगा कि ये चारों नाम तो खुदा के हैं। काजी गंभीर चिंता में डूब गया कि क्या करना चाहिए। हमारे धर्म की प्रतिष्ठा दाव पर लग गई है। इस बात को गरीबदास ने इस प्रकार कहा है–

काजी गये कुरान ले, धर लड़के का नाव।
अच्छर अच्छरों में फुरा, धन कबीर वहि जाँव
सकल कुरान कबीर है, हरफ लिखे जो लेख।
काशी के काजी कहै, गई दीन की टेक।

जब काशी के सभी काजियों को यह समाचार मिला, तो सभी बड़े ही चिंतित हुए। वे कहने लगे कि अत्यंत आश्चर्य का विषय है कि समस्त कुरान में कबीर ही कबीर है। सभी सोचते रहे, क्या उपाय किया जाए कि इस जुलाहे के पुत्र का इतना बड़ा नाम न रखा जा सके। पुनः सभी काजियों ने कुरान खोलकर देखा, तो अब भी वही चारों नाम दिखाई दे रहा था।

काजियों द्वारा नीरु को कबीर की हत्या कर देने की सलाह देना

काशी के काजी नाम के बारे में कोई दूसरा उपाय न ढूढ सकें, तो आपस में विचार करके नीरु से कहा कि तू इस बालक को अपने घर के भीतर ले जाकर मार डाल, नहीं तो तू काफिर हो जाएगा। जुलाहा काजियों की बात में आ गया और वह कबीर को मार डालने के लिए अपने घर के भीतर ले गया। नीरु जुलाहे ने कबीर के गले पर छुरी मारना शुरु कर दिया। वह छुरी गले में एक

ओर से दूसरी ओर पार निकल गयी, न कोई जख्म हुआ और न ही खून का एक बूंद भी निकला। इतना ही नहीं गर्दन पर छुरी का चिंह भी नहीं था। तब कबीर बोले कि, ऐ नीरु ! मेरा कोई माता-पिता नहीं है, न मैं जन्मता हैं, न मरता हूँ, न मुझको कोई मार सकता है, न मैं किसी को मार सकता हूँ और न ही मेरा शरीर है। तुमको दिखाई देने वाला शरीर तुम्हारी भावना मात्रा शब्दरुपी है। यह बात सुनकर जुलाहा और जुलाहिन अत्यंत भयभीत हुए। इसके साथ-साथ समस्त काशी में हुल्लड़ मच गया कि बालक वार्तालाप करता है।

अंत में विवश होकर, काजियों ने बालक का नाम कबीर ही रखा। कोई इसको बदल न सका।

बालक कबीर का दूध पीना

बालक कबीर नीरु के घर में कुछ खाते-पीते नहीं थे। इसके बावजूद उसके शरीर में किसी तरह की कोई कमी नहीं हो रही थी। नीरु और नीमा को इस बात पर चिंता हुई। वे दोनों सभी लोगों से पूछते-फिरते कि बालक क्यों नहीं खाता है, उसको खाना खिलाने का क्या उपाय हो सकता है ?

दुध पिवे न अन्न भखे, नहि पलने झूलंत।
अधर अमान ध्यान में, कमल कला फूलंत॥

नीमा और नीरु की बात सुनकर प्रत्येक व्यक्तियों ने अपने-अपने विचार दिये और कई ने तो प्रयोग भी करके देखा, पर कोई लाभ नहीं।

अंत में किसी व्यक्ति ने नीरु को सलाह दी कि रामानंद जी से मिलना चाहिए। स्वामी रामानंद जी को स्थानीय लोग बड़े सिद्ध व त्रिकालदर्शी मानते थे। नीमा-नीरु स्वामी जी के आश्रम गये, किंतु इन लोगों को वहाँ प्रवेश नहीं मिला, क्योंकि स्वामी जी के आश्रम में हिंदूओं की भी बहुत-सी जातियों को प्रवेश नहीं मिलता था। कहा जाता है कि स्वामी जी शुद्रो को देखना भी नहीं चाहते थे। नीमा-नीरु तो मुसलमान थे। मिलने का कोई अवसर न देखकर इनदोनों ने अपनी बात दूसरे व्यक्ति के माध्यम से स्वामीजी के पास पहुँचायी। स्वामी जी ने ध्यान धर कर बतलाया कि एक कोरी (कुमारी) बछिया लाकर बालक की दृष्टि के सामने खड़ी कर दो। उस बछिया से जो दूध निकलेगा, वह दूध बालक को पिलाने से वह पियेगा। नीमा और नीरु ने ऐसा ही किया। उस दिन से बालक कबीर दूध पीने लगा।

कबीर की बाल-लीला

कबीर के काल में, काशी में जलन के रोग का प्रकोप था। एक दिन बालक कबीर धूल-मिट्टी से खेल रहे थे। उसी समय एक वृद्धा स्त्री आयी और कबीर से अपने जलन-रोग का उपचार करने को बोली। बालक कबीर ने थोड़ी-सी धूल वृद्धा पर डाल दी। वह आरोग्य होकर खुशी-खुशी घर चली गई।

नीरु के घर माँस आने से कबीर का अंतःर्ध्यान हो जाना

आस-पास के मुसलमानों ने, एक व्यक्ति को बहका कर नीरु के घर मेहमान बनाकर भेजा और उस मेहमान से कह दिया कि वह नीरु को माँस खिलाने को कहेगा। उस व्यक्ति ने ऐसा ही किया। वह माँस खिलाने का हठ करने लगा। नीरु के लाख समझाने और कहने पर भी वह नहीं माना। अंत में नीरु जाति-समाज के डर से माँस लाने को तैयार हो गया। किसी ने सच ही कहा है –

'जाति-पाति हुर्मत के गाहक।
तिनको डर उर पैठयो नाहक॥'

कबीर जान गए कि नीरु ने माँस लाया है। संध्या में सभी लड़के खेलकर अपने-अपने घर आये, किंतु कबीर नहीं आये। नीमा ने आस-पास के लड़कों से कबीर के बारे में पूछा, उनलोगों से कुछ पता न चल पाया, तो दोनों बहुत अधिक विकल हो गए। रातभर उन लोगों ने ना तो कुछ खाया-पिया और न ही सोए। भोर होते ही नीरु कबीर को खोजने के लिए निकल पड़ा। आस-पास के सभी नगर में नीरु ने कबीर को खोजा, किंतु कबीर का कुछ भी अता-पता न चला। अंत में नीरु पागलों की तरह हर आने-जाने वालों से कबीर के बारे में पूछता-पूछता, इधर-उधर भटकने लगा। नीरु को इस बात का डर था कि अगर वह कबीर को साथ लिए बिना घर जाएगा, तो नीमा प्राण त्याग देगी। वह स्वयं को दोषी ठहराते हुए, गंगाजी में डूबने के लिए कूद गया।

नीरु गंगाजी की गहराइयों में गोता खाने लगा। अचानक उसे एहसास हुआ कि किसी ने उसका हाथ पकड़ कर बाहर कर दिया। नीरु ने जब आँख खोलकर देखा, तो सामने कबीर खड़े थे। वह बहुत प्रसन्न हुआ और कबीर साहब को गले लगाने, उसके नजदीक जाने लगा, किंतु कबीर साहब उससे दूर हो गये। वे कहने लगे, खबरदार ! मेरे शरीर को हाथ मत लगाना। तुम महाभ्रष्ट हो। कबीर

के कहने का भाव समझ कर नीरु वात्सल्यभाव से बालक को फिर यह कहता हुआ पकड़ने का प्रयत्न करने लगा –

कहु प्यारे काल्ह कहँ रहेऊ
हम खोजत थकित होइ गयऊ॥

कबीर साहब पीछे हटते हुए बोले –

कहहिं कबीर हम उहां न जाहीं
तुम आभच्छ आनेहु घरमाही॥

अब नीरु को कबीर की बात समझ में आई और बोला –

कहे नीरु कर जोरि अधीना
अब तो चूक सही हम कीना॥
अबकी चूक बकसिये मोही
हाथ जारिके विनवौं तोहीं॥

यह कहते हुए नीरु रोने लगा और नकरगड़ी करने लगा, तब कबीर साहब ने कहा –

ऐसे हम नहिं जैबे भाई
घर आँगन सब लीपौ जाई॥
बर्तन अशुच दूर सब करिहौ
करि अस्नान वस्तर तन फेरिहौ॥
ऐसी करिहाँ जाई तुम, तौ पाइहो वहि ठाँउ।
नाहीं तो घर को को कहै, ताजि जाऊँ यह गाउँ॥

इतना सुनकर नीरु मन-ही-मन बहुत डरा और उसी क्षण घर पहुँचा तथा कबीर की आज्ञानुसार, सफाई करके कबीर के आने की प्रतीक्षा करने लगा। तब कबीर नीरु के घर प्रकट हुए और नीरु तथा नीमा से कहा –

नीरु सुनहु श्रवण दे, फेर जो ऐसी होई।
तब कछु मेरी दोष नहीं, जैदो जन्म बिगोई॥

दोनों स्त्री-पुरुष ने हाथ जोड़कर क्षमा माँगी और कहा अब ऐसी भूल कभी न होगी। आप हमको न त्यागें।

कबीर साहब की सुन्नत

कुछ दिनों के बाद, समस्त जुलाहे इकट्ठा होकर नीरु से कहने लगे कि अपने रसुल अल्लाह की आज्ञा के अनुसार, अब तुम अपने पुत्र का खतना (

मुसलमानी) कराओ। एक-एक कर सभी जोलाहे नीरु के घर इकट्ठा हुए और काजी को बुलाया गया। काजी ने नाई को कबीर साहब का खतना करने का हुक्म दिया। नाई उस्तरा लेकर कबीर साहब के पास पहुँचा। कबीर साहब ने नाई को पाँच लिंग दिखलाए और नाई से कहा, इन पाँचों में से जिसको चाहो, तू काट ले। यह स्थिति देखकर नाई भयभीत हो गया और तुरंत वहाँ से भाग गया। इस प्रकार खतना न हो सका।

कुर्बानी

एक बार कबीर साहब छोटे-छोटे बच्चों के साथ खेल रहे थे। इसी बीच काजी ने गाय की कुर्बानी करने का प्रबंध किया, लेकिन कबीर साहब को इस बात की भनक मिल गई और खेलना छोड़ कर दौड़ते हुए गाय के पास पहुँच गए। आपने देखा कि काजी गाय को समाप्त कर चुका था। आपने काजी को अनेक उपदेश दिये, साथ-ही-साथ काजी को लज्जित भी किया। काजी लजाकर अपने अपराध के निर्मित क्षमा का प्रार्थी हुआ। आपने समाप्त गाय को जीवित कर दिया और अंतर्ध्यान हो गए।

कबीर साहब को नीरु के घर से भगाने का प्रयत्न

नीरु के घर सिद्ध बालक को देखकर, उसकी प्रसिद्धि से आसपास के लोग नीरु से जलते थे। नीरु के द्वारा अपने घर में सदा माँस न लाने की प्रतिज्ञा कर लेने से, माँसाहारी मुसलमान उससे बहुत क्षुब्ध हो गये थे। इन सभी मुसलमानों ने उसे धर्म भ्रष्ट होते, समझकर नीरु को सुधारने की फिक्र करना प्रारंभ कर दिया।

काशी के जोलहन मिली, आनि कियों परपंच।
सबै कहैं नीरु तुम क्या बैठे निश्चिन्त।
बेटे की तुम सुनति कराओ
पंचों का तुम हाथ पुलाओ॥
काजी मुलना को बुलवाओ
शैनी और शराब मँगाओ॥

इस प्रकार की उनकी सुनकर नीरु ने कान पर हाथ रखकर कहा –

नरु कहे सुन्नति बखाओ
पै नहिं गैनी गला कटाओ॥

नीरु की यह बात सुनकर उसकी जाति बिरादरी के लोगों ने उससे क्रोधित होकर कहा –

जोलहा सब तब कहैं रिसाई।
वया नीरु तुम अकिल गवाँई॥
अपने कुल की रीति न छोड़ो।
कुल परिवार करिहें सब भांडो॥
गैनी बिना कैसे बनै, मुसलमान की रीति।
पीर पैगम्बर रुठिहैं, खता खाहुगे मति॥

यह सुनकर नीरु कहा –

नीरु कहै सुनो रे भाई।
ऐसो करौं तो पूत गँवाई॥
एक बार घर आमिष आना,
तेहि कारण सुत आया बिगाना॥
क्या रुठे क्या खुशी हो, पीर पैगम्बर झारि।
गौधात मैं ना करो, नीरु कहै पुकारि॥

सभी जुलाहे कबीर साहब के अंतर्ध्यान होने को जान चुके थे। वह यह भी जानते थे कि नीरु के घर माँस होने से कबीर साहब अंतर्ध्यान हो जाते हैं, इसलिए सब विद्वेशियों और पक्षपातियों ने मिलकर नीरु को बहकाकर उसके द्वारा गोहत्या कराना चाहा, जिससे कबीर साहब नीरु के घर से रुष्ट होकर चले जाए। किंतु जब सब जुलाहों तथा काजी मुसलमानों ने देखा कि नीरु उनकी चाल में नहीं पड़ने वाला है, तो वह दूसरी चाल चले और छल से कहा –

जोलहन मिली छल से कहयो, और करु सब साज
नीरु तुमरे कारने गैनी आयड बाज॥

उन लोगों ने विचार किया कि नीरु के अनजाने में गाय जबह करेंगे, जिसको देखकर कबीर वहाँ से भाग जाएँ। काजी सहित अन्य मुसलमानों ने अवसर पाकर चुपचाप गाय मंगाकर, जबह कर दिया। नीरु इस काण्ड से एकदम अज्ञान थे। यद्यपि उन दुष्टों के इस गुप्त काण्ड को किसी ने नहीं जाना, परंतु अंतर्ध्यानी सर्वज्ञ कबीर साहब ने इस बात को जान लिया। वह बच्चों के साथ खेल रहे थे। खेल छोड़कर वहाँ से दौड़े और गाय हत्या के स्थान पर पहुँचे तथा काजी से कहा –

हो काजी यह किन फरमाये, किनके माता तुम छुरी चलाए।
जिसका छीर जु पीजिए तिसको कहिए माए॥
तिसपर छुरी चलाऊँ, किन यह दिया दिढाय॥

यह सुन काजी ने उत्तर दिया –

सुन कबीर बडन सो, होत आई यह बात।
गोस कुतुब औ औलिया, हजरत नबी जमात॥

कबीर साहब ने काजी की बात सुनकर कहा, ऐ काजी ! और मुल्ला तथा दूसरे मुसलमानों! तुमलोग गफलत में पड़कर नाना प्रकार से जीवों को सताने को धर्म मानते हो। वास्तव में यह तुमको नर्क तक ले जाने वाला रास्ता है।

आदम आदि सुधि नहिं पायी। मामा हौब्बा कहते आयी॥
तब नहिं होते तुरुक औ हिंदू। मायको रुधिन पिता को बिंदू॥
तब नहिं होते गाय कसाई। तब बिसमिल किन फरमायी॥
तब नहिं रहो कुल औ जाति। दोजख विहिरत कहाँ उत्पाती॥
मन मसले की खबर न जाने। मति भुलान हो छीन बखाने॥
संयागेकर गुण रखे, बिन जोगे गुण जाय।
जिह्मवा स्वाद कारने, क्रीन्हे बहुत उपास॥

कबीर साहब की ये बातों को सुनकर काजी मुल्ला सभी बहुत क्रोधित हुए और कहने लगे कि नीरु का यह लड़का काफिर हो गया है। ये नबी पैगम्बर पीर औलिया सबको तुच्छ समझता है और स्वयं को बड़ा ज्ञानी। उनके क्रोध को देखकर नीमा और नीरु दोनों बहुत डर गये, किंतु कबीर साहब ने निर्भय होकर विनयपूर्वक काजी से पूछने लगे –

केहि कारण तुम इहवां आयौ।
यहि जगह किन तुमहिं बुलाया

काजी ने कहा –

जोलहन मोहिं बुलायऊ, तोहो सुन्नत काज।
अब तुम मुस्लिम होयके, रोजा करहु निमाज॥
कलमा पढो नबी का, छोड़हु कुफ्रु की बात।
तब तुम बहिश्तहि जाहुगे बैठहु नबी जमात॥

काजी की बात सुनकर कबीर साहब ने कहा –

जिन्ह कमला कलिमांहि पढ़ाया। कुदरत खोज उनहु नंहि पाया।
करमत करम करै करतूती। वेद किताब भाया सब रीती॥
कमरत सो जों गाय औतरिया। करमत सो जो नामसिं धरिया।

करमत सुन्निति और जनेऊ। हिंदू तुरुक न जाने भेऊ।।
पानी पवन संजोयके, रचिया इ उत्पात।
सून्द्यहिं सुरत समानिया, कासो कहिये जात।।

काजी, मुल्लाहों व कबीर के आपस में बहस को देखकर वहाँ भीड़ जमा हो गयी। भीड़ में से एक हिंदू ने कबीर से कहा कि तुमको अपने धर्म का नियम मानना चाहिए। काजी और मुल्ला, जो कि धर्म के रक्षक और उपदेशक हैं, उनकी आज्ञा से तुमको अपनी सुन्नत करवा लेनी चाहिए। जैसे देखो हमारे धर्म में भी प्रत्येक बालक की जनेऊ होती है, वरन् उसको शूद्र के तुल्य माना जाता है। वहाँ उपस्थित सभी लोगों ने एक मत होकर कहा कि इसको पकड़ कर बाँधों और सुन्नत कर दो। काजी ने लोगों की बातों से सहमत होकर कुछ मुस्टंडे मुसलमानों को आज्ञा दिया कि कबीर को रस्सी से बाँधों। काजी के आज्ञानुसार बाँधकर, सभी लोग नाई की खोज करने लगे। नाई पहले ही भयभीत होकर भाग चुका था। काजी घबरा कर इधर-उधर भागता हुआ नाई को ढूढ़ रहा था। उस समय काजी को कबीर साहब ने कहा –

काजी तुम कौन किताब बखाना।
झंखत बकत रहो निसि बासर मति एको नहि जाना।।
सकति न मानो सुनति करत हो मैं न बेदांगा भाई।
जो खुदाय तुव सुनति करत तो आप काटि किन आई।।

इतना कहकर कबीर साहब उठ खड़े हुए। उनके शरीर से बंधा सभी बाँध खुद ही खुलकर गिर पड़ा। रस्सी को टूटता देखकर, सभी लोग आश्चर्य चकित हो गये। कबीर ने काजी से कहा –

कहे कबीर सुनोहो काजी ! यह सब अहे शैतानी बाजी।
छिः ! छिः ! क्या इसी को मुसलमान कहते हैं।
यदि तरीका जो मुसलिम होई।
तौपै दोजख परै न कोई।।

कबीर ने मुस्कराते हुए काजी से कहा, तुमको स्वयं मुसलमानी का पता नहीं है और मुझको मुसलमान बनाने आये हो ––

तुम तो मुस्लिम भये नहिं भाई। कैसे मुस्लिम करहू आयी।

काजी के करतूत और उनकी बयानी को देखकर कबीर ने एक बार फिर कहा –

भूला वे अहमक नदाना। हरदम रामहिं न जाना।। टेक।।
बरबस आनिके गाय पछाए, गला काहि जिख आप लिया।

जीता जीव मुर्दा करि डाला, तिसको कहत हलाल किया।
जाहि माँस को पाक कहत है, ताकि उत्पत्ति सुन भाई।
रज बीरज सो मास उपाना, सोई नापाक तुम खाई।
अपनो दोष कहत नाहिं अहमक, कहत हमारे बड़ेन किया।
उनकी खुब तुम्हारी गर्दन, जिन तुमको उपदेश दिया।
सियाही गयी सुफैदी आयी, दिल सुकेद अजंहु न हुआ।
रोजा नामाज बांग बया कीजै, हजुरे भीतर बैठ मुआ।
पण्डित वेद पुरान पढ़ै, मुलना पढ़ै जो कुराना।
कहै कबीर वे नरके गये, गिन हरदम रामहिं ना जाना।

इतना कहकर कबीर साहब मरी हुई गाय के पास गये –

बहुविधि से काजी को समझायी। महापाप जीव घात बहायी।
फिर कबीर ग ढिए जायी। मरी गाय तिहिं काल जिवाभी।।

जैसे ही कबीर साहब ने गाय के पीठ पर हाथ फेरा, गाय जीवित होकर उठ बैठी। कबीर साहब ने गाय को गंगा में स्नान कराकर, नगर में स्वतंत्र घूमने को छोड़ दिया और स्वयं भी नीरु और नीमा के घर को उसी दिन से छोड़ दिया। कई दिनों तक नीरु और नीमा को कबीर साहब का दर्शन न हुआ। ये दोनों उनके विरह में, बहुत अधिक विकल होकर पागलों की तरह जहाँ-तहाँ घूमने लगे। अंत में करुणामय कबीर ने करुणा करके दोनों को बाहर किसी दूसरे स्थान पर दर्शन दिया। फिर भी उनके घर नहीं गये। कुछ भक्तों ने काशी से बाहर एक कुटी बांध दी। वे इसी कुटी में रहने लगे। कुछ दिनों के बाद नीमा और नीरु भी वहीं आकर रहने लगे।

बालक कबीर का काफिर की व्याख्या करना

बालक कबीर साहब जब छोटे-छोटे बच्चों के साथ खेलते थे, तब सदैव 'राम-राम', 'गोविंद-गोविंद', 'हरि-हरि' कहा करते थे। यह सुनकर मुसलमान लोग कहते थे कि यह लड़का कट्टर काफिर होगा। बालक कबीर ने उन मुसलमानों को जवाब दिया कि –

1. काफिर वह होगा, जो दूसरों का माल लूटता होगा।
2. काफिर वह होगा, जो कपट भेष बनाकर संसार को ठगता होगा।
3. काफिर वह होगा, जो निर्दोष जीवों को काटता होगा।
4. काफिर वह होगा, जो माँस खाता होगा।

5. काफिर वह होगा, जो मदिरा पान करता होगा।
6. काफिर वह होगा, जो दुराचार तथा बटमारी करता होगा।

फिर मैं कैसे काफिर हूँ ?

उसी समय आपने यह साखी कहा –

गला काटकर बिसमिल करें, ते काफिर बेबूझ।
औरन को काफिर कहै, अपनी कुफ्र न सूझ।।

बालक कबीर वैष्णव के रुप में

बालक कबीर ने एक बार अपने गले में यज्ञोपवीत व माथे पर तिलक डाल लिया। ब्राह्मणों ने देखा तो कहने लगे कि यह तो मेरा धर्म है, तुम्हारा धर्म तो दूसरा है। तूने यह वैष्णव वेष कैसे बना लिया ? और तू ''राम-राम'' ''गोविंद-गोविंद'' क्यों कहता है ? यह तो तुम्हारा धर्म नहीं है। तब कबीर साहब ने उनलोगों को उत्तर देते हुए कहा कि गोविंद व राम तो हमारे हृदय में बसे हुए हैं। तुम्हारे कैसे हुए ? तुम गीता पढते हो, परंतु सांसारिक धन के लिए सदैव द्वार-द्वार दौड़ते ही रहते हो और हम तो गोविंद के अतिरिक्त अन्य किसी को जानते ही नहीं हैं। आपने ये शब्द कहा–

मेरी लिह्मवा बिस्तू लैनाचरायन हिरदे बसे गोविंद।
जम द्वारे जब पूछि परे तब का करे मुकुंदा।। टेक।।
हम घर सूत तनै नित ताना, कंठ जनेऊ तुम्हारे।
तुम नित बांचत गीता गायत्री, गोविंद हिरदे हमारे।।
हम गोरु तुम ग्वाल गुसाई, जनम जनम रखवहो।
कबहिं न बार सो पार चराये, तुम कैसे खसम हमारे।।
तुम बामन हम काशी के जुलहा, बूझो मेरा गयाना।
तुम खोजत नित भुपति राजे, हरि संग मेरा ध्याना।।

मुसलमानों और हिंदूओं, दोनों का अपने-अपने धर्म के पैगम्बर व भगवान के नाम पर अड़े रहने और ''राम-राम'' ''गोविंद-गोविंद'' को अपना भगवान कहने पर कबीर ने कहा –

भाई दुई जगदीश कहांते आये कौने मति भरमाया।
अल्लाह राम करीमा केलव हरि हजरत नाम धराया।।
गहना एक कनक ते बनता तामें भख न दूजा।
कहव कहन सुनत को दुई कर आये इक निमाज इक पूजा।।
वहि महादेव वही मुहम्मद ब्रह्मा आदम कहिये।

कोई हिंदू काई तुरक कहखे एक जमीं पर रहिये।।
वेद किताब पढ़ै व खुतबा वे मुलना वे पांडे।
विगत विगत कै नाम धरावें एक भटिया के भांडे।।
कहै कबीर वे दूनो भूले रामे किन्हु न पाया।
वे खसिया व गाय कटावें वादे जन्म गवांया।।

कबीर साहब का रामानंद स्वामी वैष्णव के पास जाना

कबीर साहब जब पाँच वर्ष के हुए, तो आपने स्वयं को शिष्य बनाने के लिए रामानंद स्वामी के पास समाचार भेजा, लेकिन रामानंद स्वामी ने कबीर को शिष्य बनाने से इनकार कर दिया, क्योकि स्वामी रामानंद जी कबीर को शुद्र मानते थे।

कबीर वचन

रामानंद गुरुदिच्छा दीजे। गुरुदच्छिना हमसे लीजो।।

रामानंद वचन

सूद्र के कान न लगा भाई। तीन लोक में मोर बडायी।

स्वामी रामानंद जी के स्पष्ट इनकार कर दिये जाने के पश्चात, कबीर साहब वहाँ से चुपचाप लौट आये।

कबीर का एक छोटा लड़का होकर स्वामी के पथ में पड़ना

रामानंद स्वामी प्रत्येक रात के अंत भाम में गंगा स्नान करने के लिए जाते थे। कबीर साहब ने निश्चय किया कि जब स्वामी जी स्नान करने जाएँगे, तो छोटा बच्चा बनकर उनके मार्ग में सो जाएँ। कबीर साहब ने ऐसा ही किया। रामानंद स्वामी जी खड़ाऊँ पहनकर स्नान करने के लिए आए। जैसे ही वह सीढ़ी पर पहुँचे कि उनकी खड़ाऊँ से बालक के सिर में ठोकर लग गई।

स्वामी रामानंद का कबीर साहब को शिष्य स्वीकार करना

कबीर साहब कुछ लोगों के साथ रामानंद स्वामी के ठिकाने पर आये। रामानंद स्वामी उस समय किसी से नहीं मिलते थे और नहीं किसी को देखते थे। लोगों ने कबीर साहब को परदे के पीछे खड़ा कर दिया। कबीर ने स्वामी से कहा कि स्वामी जी आपने मुझे अपना शिष्य बना लिया है? स्वामी जी यह

सुनकर आश्चर्यचकित हो गए और पूछा कब ? कबीर साहब ने गंगा नदी के स्नान को जाते हुए सीढियों पर स्वामी के खड़ाऊँ की चोट को विस्तारपूर्वक बताया और कहा कि आपने मेरे माथे पर हाथ रखकर राम-राम पढ़ने को कहा था। मैं उसी दिन से आपको गुरु मानकर ''राम-राम'' पढ़ता रहता हूँ। रामानंद स्वामी जी ने कहा उस समय तो बहुत छोटा बच्चा सीढियों पर मिला था। कबीर साहब ने उत्तर दिया कि स्वामी जी वह मैं ही था और वैसा ही बच्चा बनकर स्वामी के गुफा के भीतर गए और उनके चरणों पर गिरकर कहने लगे कि मैं उस समय ऐसा ही था। कबीर साहब को इस तरह देखकर लोगों को आश्चर्य हुआ। तब स्वामी जी के सबसे बड़े चेले अनंतानंद ने स्वामी जी को समझाया और कहा कि यह बालक मनुष्य नहीं, बल्कि सिद्ध का अवतार है। इस तरह स्वामी जी मान गए और कबीर साहब को अपना शिष्य बना लिया।

कबीर साहब को गुरु के समान मानना

स्वामी रामानंद जी के सभी शिष्य कबीर साहब को गुरु के समान मानते थे। सभी आपको अत्यंत मर्यादा एवं प्रतिष्ठा दिया करते थे। स्वयं आप भी सभी गुरु भाई से नितांत ही नम्रतापूर्वक मिलते थे। स्वामी रामानंद जी के सभी चौदह सौ चौरासी शिष्य आपके आज्ञाकारी थे और आपको सभी का सरदार बनाया गया था।

कबीर साहित्य

कबीर साहित्य में जहाँ दर्शन, अध्यात्म, ज्ञान, वैराग्य की गूढता मिलती है, वहीं उनके साहित्य में समाज सुधार का शंखनाद भी है। वह दार्शनिक होने के साथ-साथ, समाज सुधारक भी थे। समाज सुधार अर्थात् जन जीवन का उत्थान कबीर के जीवन की साधना थी। सुधार का समन्वित स्वरूप कि उन्होंने भक्ति के आडम्बरों पर चोट की, वहीं अंधविश्वासों, रूढ़ि प्रथा, परम्पराओं, अंधविश्वासों पर भी निर्भीकता से लिखा। भक्ति में सुधार, समाज की कुप्रथाओं में सुधार, जीवन के हर क्षेत्र में सुधार, कबीर के जीवन की साधना रही है। कबीर कवि होने के साथ ही साधक थे, दर्शनिक थे, तत्त्वान्वेषी थे, भक्त और ज्ञानी थे। वस्तुतः कबीर का जीवन उच्चतम मानवीय व्यक्तित्त्व की अभिव्यक्ति है।

प्रचलित धारणाओं के अनुसार, मस्तमोला संत कबीर रामानन्द जी के शिष्य थे। कबीर की जन्म तिथि में विभिन्न मतमतांतर हैं, पर विक्रमी सम्वत्

के अनुसार पन्द्रवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध, सोलहवीं का प्रारम्भ व 1455–56 के आसपास ही इनका जन्मकाल रहा। जन्मस्थान कोई काशी, कोई मगहर तथा कोई बलहरा गाँव आजमगढ़ के पास मानता है।

कबीर जब हुए देश में उथल–पुथल का समय था। मुसलमानों का आगमन, उनका आक्रमण, राज्य स्थापन और यहीं बस जाना, देश के इतिहास की बडी महत्त्वपूर्ण घटना थी। मुसलमानों का आक्रमण राजनीतिक वर्चस्व कायम करना ही नहीं, बल्कि इस्लाम का प्रचार अधिक था। अलग सांस्कृतिक एवं सामाजिक इकाई के रूप में कट्टर विरोधी होकर रहना, हिन्दू समाज को अपने में आत्मसात् करने की भावना से सारा हिन्दू समाज आतंकित एवं भयभीत था। मूर्तियाँ व मंदिर खण्डित होते रहे। इस विषमतापूर्ण समय में हिन्दुओं के समक्ष, अपनी सांस्कृतिक आत्मरक्षा का प्रश्न था। ऐसे में पुनरुत्थान कार्य, साम्प्रदायिक एवं जातीय भावनाओं को सामने रखकर किया जाना सम्भव नहीं था। हिन्दुओं में भी विभिन्न मतमतांतर, पंथ, सम्प्रदाय बन चुके थे, जो हिन्दू समाज में अन्तर्विरोध दर्शाते थे। मानना होगा, ऐसी विपरीत स्थितियों के समय में जब हिन्दू संस्कृति, धर्म, जाति को झकझोर दिया गया था–कबीर की समन्वय साधना ने, समाज में पुनरुत्थान का कार्य किया। पुनरुत्थान भक्ति साधना से ही सम्भव था। कबीर का साहित्य इस बात का साक्षी है।

कबीर के पहले तथा समसामयिक युग में भक्ति साधनाओं में सबसे प्रमुख भक्ति साधना ही है। भक्ति आन्दोलन ने भगवान की दृष्टि में सभी के समान होने के सिद्धान्त को फिर दोहराया। कबीर की भक्ति भावना तथ्य से जुडी है। भक्तिपथ में भक्ति के द्वारा प्राण स्पंदन देने वालों में कबीर भी प्रमुख हैं। अनेकानेक साधनाओं के अन्तर्विरोध के युग में कबीर जन्मे थे। कबीर के व्यक्तित्त्व को सभी अन्तर्विरोधों ने प्रभावित किया, इस पर कबीर ने समन्वयवादी दृष्टिकोण अपनाया। कबीर में परिस्थितिजन्य निर्णय की अभूतपूर्व क्षमता थी। वह आत्मचिंतन से प्राप्त निष्कर्षों को कसौटी पर कसने में कुशल थे। कबीर ने मानवतावादी तत्त्वग्राही व्यक्तित्त्व से अपने दृष्टिकोण में मजहबी, वर्गगत अहंकार तथा आचार संहिता की जडकारा में उलझा देने वाले तत्त्वों को भुला त्याग दिया। कबीर नैतिकता से विकसित भगवत्प्रेम में मानव कल्याण समझते हैं। कबीर की दृष्टि में यही मानवता का मूल आधार है। कबीर जीवन का चरम लक्ष्य परम तत्त्व की प्राप्ति मानते हैं। इस तत्त्व को प्राप्त करने का प्रमुख साधन ज्ञान और प्रेम है। कबीर के अनुसार ज्ञान से मतलब शास्त्र ज्ञान के अहंकार से मुक्त व्यक्ति

को सहज रूप से ज्ञान होता है। ऐसे ही प्रेम का सहज रूप ही कबीर को मान्य है। कबीन ने आध्यात्मिक, धार्मिक, दार्शनिक एवं साधना के स्तर पर समन्वय का संदेश दिया है। कबीर संत हैं-भक्त हैं। कबीर ने अपने साहित्य में, भक्ति, प्रेम व सदाचरण से भगवान को प्राप्त करने का संदेश दिया। वस्तुतः कबीर की व्यथा किसी वर्ग विशेष की व्यथा नहीं थी, वह व्यापक मानवता की व्यथा थी। वर्तमान संदर्भों में उन्होंने आज की तरह प्रतिष्ठा दिलाने के लिए साधना नहीं की, क्योंकि कबीर के अनुसार साधना से ही मूलतः मानव व प्राणी मात्र का आध्यात्मिक कल्याण है।

कबीर के अनुसार पिंड और ब्रह्माण्ड से भी परे, निर्विशेष तत्त्व है, वही सबसे परे परम तत्त्व है, जिसका अनुभव होने पर भी वाणी में अवर्णनीय है। वह अलख है, उसे कहा नहीं जा सकता। पिंड और ब्रह्माण्ड से परे का, जो तत्त्व है वही हरि है। उसका कोई रूप नहीं, वह घट -घट में समाया है। कबीर ने इस तत्त्व को कई नामों से व्यक्त किया है। अलख, निरंजन, निरर्भ, निजपद, अभैपद, सहज, उनमन तथा और भी। "गुन में निरगुन, निरगुन में गुन हैं बाँट छाड क्यों जहिए। अजर अमर कथै सब कोई अलख न कथणां जाई।।" इसी चिंतन में कबीर कहते हैं–"जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है–बाहर भीतर पानी। फूटा कुंभ जल जलहि समाना, यह तत कथौ गियानी।।" तथा–"पानी ही से हिम भया हिम है गया बिलाई।।''

प्रेम साध्य भी है–साधन भी। प्रेम स्वयं ही प्रेम का वरण करता है। अर्थात् केवल प्रेम के अनुग्रह से प्रेम प्राप्त होता है। प्रेम लौकिक, अलौकिक दोनों स्तर पर एक-सा रहता है। प्रेम वस्तुतः आत्मरति रूप है, अहेतुक होता है। आत्मबोध की सहज स्थिति आत्मरति है। कबीर ने आध्यात्मिक प्रेम को लौकिक माध्यम से व्यक्त किया–"कबीर यह घर प्रेम का खाला का घर नाहिं। सीस उतारे हाथि करि, सो पैसे घर मांहि।।'' कबीर का सौन्दर्य ब्रह्म सविशेष ब्रह्म है, इससे उनके अन्तःकरण में भगवान का प्रेम जागा तो कबीर ने कहा, "संतो भाई आई ज्ञान की आंधी रे। भ्रम की टाटी सबै उडानी, माया रहे न बाँधी रे।।" कबीर के अनुसार लौकिक और आध्यात्मिक का भेद प्रेम की दिव्यता में बाधक नहीं है।

रहस्यवाद की तीन अवस्थाएँ होती हैं, अनुराग उदय, परिचय, मिलन। कबीर साहित्य में भावनात्मक तथा साधनात्मक दोनों तरह का रहस्यवाद मिलता है। कबीर में भावनात्मक रहस्यवाद की प्रथम अवस्था से ही साधनात्मक रहस्यवाद के भी दर्शन होते हैं। "पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान। कहिये

कूँ सोभा नहीं–देख्या ही परमान।।" वह और भी आगे लिखते हैं–"सुरति समांणी निरति में, निरति रही निरधार। सुरति निरति परचा भया तब खुले स्वयं दुवार।।" और भी "जो काटो तौ डहडही, सींचौ तौ कुमिलाइ।।''

कबीर साहित्य में साखी कबीर का जीवनदर्शन है। साखी कबीर साहित्य का बहुत ही महत्त्वपूर्ण अंश है। साखियों में कबीर का व्यक्तित्त्व समग्र रूप से व्यक्त हुआ है। "साखी आँखी ज्ञान की समुझि लेहु मनमाहिं। बिनु साखी संसार का झगडा छूटै नाहिं।।'' कबीर साहित्य में गुरु का स्थान सर्वोपरि ईश्वर समकक्ष है। कबीर के अनुसार गुरु शिष्य को मनुष्य से देवता कर देता है। "गुरु गोविन्द दोउ खडे-काके लागूं पाय। बलिहारी गुरु आपने गोविन्द दियो मिलाय।" सद्गुरु के बारे में कबीर लिखते हैं "ग्यान प्रकास्या गुरु मिल्या, सो जन बीसरि जाइ। जब गोविन्द कृपा करी, तब गुरू मिलिया आई।।" इसके विपरीत अज्ञानी गुरु के बारे में कबीर कहते हैं–"जाका गुरु भी अंधला, चेला खरा निरंध। अंधे अंधा ठेलिया, दून्यूं कूप पडंत।।" आज के संदर्भों में दार्शनिक कबीर की व्यक्त हुई कुछ-कुछ सटीक-सी लगती भावना "नां गुरु मिल्या न सिष भया, लालच खेल्या डाव। दुन्यूं बूडे धार में–चढ पाथर की नाव।''

जैसे ही सुमिरण को अंग, यानी मनन की अवस्था, विनती को अंग अर्थात् भगवान के समक्ष अपनी लघुता की अनुभूति तथा पति परमेश्वर के भाव की अभिव्यक्ति है। कबीर ने इस तरह 'अंग' के माध्यम में पचासों अंगों के तहत ज्ञान की अभिव्यक्ति हुई है। कबीर पर वैदिक विचारधारा, वैष्णव विचारधारा का प्रभाव था, उन्होंने अपने साहित्य में एकात्मक अद्वैतवाद, ज्ञान तत्त्व, गुरु भक्ति, भगवद्भक्ति, अध्यात्म योग, प्रणवोपासना, जन्मान्तरवाद, भगवान के विविध वैष्णवी नाम, ब्रह्म स्वरूपों में श्रद्धा, भक्ति उपासना तथा प्रपत्ति, योग के भेद, माया तत्त्व आदि के माध्यम से काव्य रचना को संजोया। निर्भीक सुधारवादी संत कबीर ने, भक्ति ही क्या हर क्षेत्र में अंधविश्वासों पर चोट कर, रूढ परम्पराओं आडम्बरों से अलग हट, सामाजिक सुधार भरपूर किया। हिन्दू-मुसलमान दोनों के ही साम्प्रदायिक, रूढ़िग्रस्त विचारों की उन्होंने आलोचना की। अपनी सहज अभिव्यक्ति में कबीर ने लिखा–"कंकर पत्थर जोड के मस्जिद दी बनाय। ता पर मुल्ला बांग दे, बहरा हुआ खुदाय।।" इतना ही नहीं इससे भी बढ़कर लिखा "दिन में रोजा रखत हो, रात हनत हो गाय। यह तो खून औ बंदगी, कैसे खुशी खुदाय।।" ऐसे ही हिन्दुओं के अंधविश्वासों पर उन्होंने चोट की। धर्म के क्षेत्र में आडम्बरों का कबीर ने खुला विरोध किया। "पाहन पूजे हरि मिले–तो मैं पूजूं

पहार। ताते तो चाकी भली, पीस खाय संसार।।" कबीर का दृष्टिकोण सुधारवादी था उन्होंने बताया "मूंड मुंडाए हरि मिले, सबही लेऊँ मुंडाए। बार-बार के मूंड ते भेड न बैकुंठ जाए।।" कबीर ने हिन्दुओं के जप-तप, तिलक, छापा, व्रत, भगवा वस्त्र, आदि की व्यर्थता बताते हुए लिखा-"क्या जप क्या तप संयमी, क्या व्रत क्या अस्नान। जब लगि मुक्ति न जानिए, भाव भक्ति भगवान।।" मरणोपरांत गंगा में अस्थि विसर्जन पर कबीर ने लिखा-"जारि वारि कहि आवे देहा, मूआ पीछे प्रीति सनेहा। जीवित पित्रहि मारे डंडा, मूआ पित्र ले घालै गंगा।।" समाज में कई अस्वस्थ लोकाचारों पर कबीर ने प्रहार किए। वे कहते हैं-यदि मन में छल कपट की गर्द भरी है तो योग भी व्यर्थ है। "हिरदे कपट हरिसँ नहिं सांचो, कहा भयो जो अनहद नाच्यौ।।''

कबीर ने ब्रह्म को करुणामय माना है। ब्रह्म माया और जीव के सम्बन्ध में कबीर के दार्शनिक विचारों का वर्णन है। कबीर निर्गुणोपासक थे। उन्होंने राम के गुणातीत, अगम्य, अगोचर, निरंजन ब्रह्म का वर्णन किया है। मानना होगा भक्ति आन्दोलन के सुधारवादी भक्त कवियों में कबीर का अपना अलग ही स्थान व नाम है। भगवा वस्त्र पहन कर जंगलों की खाक छानने के पक्ष में कबीर नहीं थे। उन्होंने धर्म एवं भक्ति में दिखावे को त्याग, तीर्थाटन, मूर्तिपूजा आदि को धर्म परिधि से बाहर रखा। कबीर कहते हैं, "काम-क्रोध, तृष्णा तजै, ताहि मिले भगवान।।" राम अर्थात् उनके ब्रह्म में अपने खुद के समर्पण की चरमसीमा देखने योग्य है। "लाली मेरे लाल की, जित देखूं तित लाल। लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल।।'' कबीर के बारे में किसी ने यह सही लिखा प्रतीत होता है, "ज्ञान में कबीर परम हंस, कल्पना में योगी, और अनुभूति में प्रिय के प्रेम की भिखारिणी पतिव्रता नारी हो।'' कबीर में अतिवाद कहीं भी नहीं। ब्रह्म परमसत्ता को कबीर ने सहजता से सर्वव्यापी बताते हुए कहा-"ना मैं गिरजा ना मैं मंदिर, ना काबे कैलास में। मौको कहाँ ढूंढे बंदे, मैं तो तेरे पास में।।''

कबीर का दृष्टिकोण सुधारवादी ही रहा। कबीर ने किसी धर्म विशेष एवं दर्शन की पताका ऊँची नहीं की। वस्तुतः उन्होंने तो अपने को मानवीय तत्त्वों से सम्बद्ध रखा। धर्म व सुधार के नाम पर कबीर ने जनता को उलझाया नहीं, उन्होंने तो खण्डन कर उलझनों से दूर रखा। जनमानस को अभेद की ओर प्रेरित कर भ्रम-माया से दूर रहने की प्रेरणा दी, इसीलिए कबीर मानवतावादी सुधारक माने जाते हैं। कबीर ने ईश्वर प्रेम, भक्ति व साधना में माया को बाधक माना। कबीर ने कहा माया आकर्षक व मनमोहक है। माया आचरण के कारण ही आत्मा अपने

परमात्म रूप को नहीं पहचान पाती। माया ब्रह्म से मिलने नहीं देती। "कबीर माया पापणी, हरि सूं करे हराम। मुख कडया को कुमति, कहने न देई राम।।

पंद्रहवीं शताब्दी में संतकाल के प्रारंभ में सारा भारतीय वातावरण क्षुब्ध था। बहुत से पंडित जन इस क्षोभ का कारण खोजो में व्यस्त थे और अपने-अपने ढ़ंग पर समाज और धर्म को संभालने का प्रयत्न कर रहे थे। इस अराजकता का कारण इस्लाम जैसे एक सुसंगठित संप्रदाय का आगमन था। इसके बाद देश के उथल-पुथल वातावरण में महात्मा कबीर ने काफी संघर्ष किया और अपने कड़े विरोधों तथा उपदेशों से समाज को बदलने का पूरा प्रयास किया। सांप्रदयिक भेद-भाव को समाप्त करने और जनता के बीच खुशहाली लाने के लिए निमित्त संत-कबीर अपने समय के एक मजबूत स्तंभ साबित हुए। वे मूलतः आध्यात्मिक थे। इस कारण संसार और सांसारिकता के संबंध में उन्होंने अपने काल में जो कुछ कहा, उसमें भी आध्यात्मिक स्वर विशेष रुप से मुखर है।

इनके काजी मुल्ला पीर पैगम्बर रोजा पछिम निवाज।
इनके पूरब दिसा देव दिज पूजा ग्यारिसि गंगदिवाजा।
कहे कबीर दास फकीरा अपनी राह चलि भाई।
हिंदू तुरुक का करता एकै ता गति लखी न जाई।

कबीर-व्यवहार में भेद-भाव और भिन्नता रहने के कारण सांप्रदायिक कटुता बराबर बनी रही। कबीर दास इसी कटुता को मिटाकर, भाई चारे की भावना का प्रसार करना चाहते थे। उन्होंने जोरदार शब्दों में यह घोषणा की कि राम और रहीम में जरा भी अंतर नहीं है –

कबीर ने अल्लाह और राम दोनों को एक मानकर उनकी वंदना की है, जिससे यह सिद्ध होता है कि उन्होंने अध्यात्म के इस चरम शिखर की अनुभूति कर ली थी, जहाँ सभी भिन्नता, विरोध-अवरोध तथा समग्र द्वैत-अद्वैत में प्रतिष्ठित हो जाते हैं। प्रमुख बात यह है कि वे हिंदू-मुसलमान के जातीय और धार्मिक मतों के वैमनष्य को मिटाकर उन्हें उस मानवीय अद्वैत धरातल पर प्रतिष्ठित करने में मानवता और आध्यात्म के एक महान् नेता के समान प्रयत्नशील हैं। उनका विश्वास था कि "सत्य के प्रचार से ही वैमनष्य की भावना मिटाई जा सकती है। इस समस्या के समाधान हेतु, कबीर ने जो रास्ता अपनाया था, वह वास्तव में लोक मंगलकारी और समयानुकूल था। अल्लाह और राम की इसी अद्वैत अभेद और अभिन्न भूमिका की अनुमति के माध्यम से उन्होंने

हिदूं-मुसलमान दोनों को गलत कार्य पर चलने के लिए वर्जित किया और लगातार फटकार लगाई।

ना जाने तेरा साहब कैसा है,
मस्जिद भीतर मुल्ला पुकारे, क्या साहब तेरा बहिरा है,
पंडित होय के आसन मारे लंबी माला जपता है।
अंतर तेरे कपट कतरनी, सो भी साहब लखता है।

हिंदू-मुसलमान दोनों का विश्वास भगवान में है। कबीर ने इसी विश्वास के बल पर दोनों जातियों को एक करने का प्रयत्न किया। भाईचारे की भावना उत्पन्न करने की चेष्टा की।

सबद सरुपी जिव-पिव बुझों,
छोड़ो भय की ढेक।
कहे कबीर और नहिं दूज।
जुग-जुग हम तुम एक।

कबीर शब्द-साधना पर जोर दे रहे हैं। इनका कथन है, तुम श्रम तज कर शब्द साधना करो और अमृत रस का पान करो, हम तुम कोई भेद नहीं हैं, हम दोनों इसी एक पिता की संतान हैं। इसी अर्थ में कबीर दास हिंदू और मुसलमान के स्वयं विधायक हैं।

बड़े कठोर तप, त्याग, बलिदान और संकल्प शक्ति को अपना कवच बनाकर भारत की जनता ने अपनी खोई हुई स्वतंत्रता को प्राप्त कर ली, लेकिन इसके साथ ही सांप्रदायिकता की लहर ने इस आनंद बेला में विष घोल दिया। भारत का विभाजन हुआ। इस विभाजन के बाद असंख्य जानें गई, लाखों घर तबाह हुए और बूढ़े, बच्चे, जवान, हिंदू, मुस्लिम सब समाज विरोधी तत्त्वों के शिकार हुए। इन तमाम स्थितियों से निबटने के लिए मानवतावादी सुधार की आवश्यकता थी, यह काम अध्यात्म से ही संभव था। कबीर ने अपने समय और अब हमलोग भी एक दिन चले जाएँगे। उनके कहने का तात्पर्य यह है कि जीवन अल्प है। इस अवधि का सदुपयोग इस स्मरण में करना चाहिए। सांसारिक हर्ष-विषाद को विशेष महत्त्व नहीं देना चाहिए।

पंडितों का ढोंगपूर्ण रवैया देखकर उन्हें चेतावनी देते हुए कहते हैं –

पंडित होय के आसन मारे, लंबी माला जपता है,
अंतर तेरे कपट कतरनी, सो सो भी साहब लगता है,
ऊँचा निचा महल बनाया, गहरी नेव जमाता है,

कहत कबीर सुनो भाई साधो हरि जैसे को तैसा है।

कबीर शोषणकर्ता को रोषपूर्ण आगाह करते है कि भगवान के दरबार में न्याय होने पर उन्हें अपने किए का फल अवश्य भुगतना पड़ेगा। दूसरी ओर निरीह जनता को वे समझाते हुए कहते हैं –

कबीर नौवति आपणी, दिन दस लेहु बजाई,
ऐ पुर पारन, एक गली, बहुरि न देखें आई।

महात्मा कबीर कहते हैं कि यह जीवन कुछ ही दिनों के लिए मिला है, अतः इसका उपयोग सार्थक ढंग से खूब आनंदपूर्वक करना चाहिए।

जो करेंगे सो भरेंगे, तू क्यों भयो उदास,
कछु लेना न देना, मगन रहना,
कहे कबीर सुनो भाई साधो,
गुरु चरण में लपटे रहना।

"महात्मा कबीर साहब संतप्त जनता को समझाते हुए कहते हैं कि कर्त्तव्य निर्विकार रुप से करो, व्यर्थ के प्रपंच में मत पड़ो, सर्वदा अपने मन को गुरु में लगाए रहो।"

जीवित ही कछु कीजै,
हरि राम रसाइन पीजै।

महात्मा कबीर दास ने पीड़ित जनता के दुख–दर्द को दूर करने के लिए "राम रसायन" का आविष्कार किया। कबीर साहब ने पहली बार जनता को उसकी विफलता में ही खुश रहने का संदेश दिया।

कबीर मध्यकाल के क्रांतिपुरुष थे। उन्होंने देश की अंदर और बाहर की परिस्थितियों पर एक ही साथ धावा बोलकर, समाज और भावलोक को जो प्रेरणा दी, उसे न तो इतिहास भुला सकता है और न ही साहित्य इतनी बलिष्ठ रुढियों पर जिस साहस और शक्ति से प्रहार किया, यह देखते ही बनता है।

संतों पांडे निपुण कसाई,
बकरा मारि भैंसा पर धावै, दिल में दर्द न आई,
आतमराम पलक में दिन से, रुधिर की नदी बहाई।

कबीर ने समाज की दुर्बलता और अद्योगति को बड़ी करुणा से देखकर, उसे ऊपर उठाने के मौलिक प्रयत्न किया। उन्होंने भय, भर्त्सना और भक्ति जैसे अस्त्रों का उपयोग राजनैतिक विभिषिकाओं और सामाजिक विषमताओं जैसे शत्रु को परास्त करने के लिए किया। कबीर साहब यह बात समझ चुके थे कि इन

शत्रुओं के विनाश होने पर ही जनता का त्रण मिल सकता है। अत: उनका सारा विरोध असत्य, हिंसा और दुराग्रह से था। उनका उद्देश्य जीवन के प्रति आशा पैदा करना था।

कबीर का तू चित वे, तेरा च्यता होई,
अण च्यता हरि जो करै, जो तोहि च्यंत नहो।

महात्मा कबीर शोकग्रस्त जनता को सांत्वना देते हैं "तुम चिंता क्यों करते हो ? सारी चिंता छोड़कर प्रभु स्मरण करो।"

केवल सत्य विचारा, जिनका सदा अहार,
करे कबीर सुनो भई साधो, तरे सहित परिवार।

कब उनके अनुसार जो सत्यवादी होता है, उसका तो भला होता ही है, साथ-साथ उसके सारे परिवार का भी भला होता है और वे लोग सुख पाते हैं। वह कहते हैं, सारे अनर्थों की जड़, असत्य और अन्याय है, इनका निर्मूल होने पर ही शुभ की कल्पना की जा सकती है। इसी अध्यात्म का सहारा लेकर हिंदू-मुस्लिम के भेद-भाव को मिटाने का प्रयत्न किया था, इसके साथ-साथ ही उन्होंने अपने नीतिपरक पदों के द्वारा जनता का मनोबल बढ़ाने का प्रयत्न किया था। इसके साथ-साथ ही उन्होंने अपने नीतिपरक पदों के द्वारा जनता का मनोबल बढ़ाने का प्रयत्न किया था। आज के परिवेश में भी इन्हीं उपायों की आवश्यकता है।

सांप्रदायिक मतभेदों या दंगों का कारण अज्ञान या नासमझी है। इस नासमझी या अज्ञान को दूर करने के लिए कबीर दास द्वारा बताए गए उपायों का प्रयोग किया जाना आवश्यक है। कबीर की वाणी ही समस्त समस्याओं का निवारण करने में समर्थ है।

ऊँच-नीच, जाति-पाति का भेद मिटाकर सबको एक समान सामाजिक स्तर देने का कार्य किया। आज के संदर्भ में भी इसी चीज की जरुरत है।

गुप्त प्रगट है एकै दुधा, काको कहिए वामन-शुद्रा
झूठो गर्व भूलो मति कोई, हिंदू तुरुक झूठ कुल दोई॥

वर्तमान समस्याएँ चाहे सांप्रदायिक हो चाहे वैयक्तिक, सबका समुचित समाधान नैतिक मूल्य प्रस्तुत करते हैं।

कबीर दर्शन में जाति-धर्म का कोई बंधन स्वीकार नहीं है। सारे अलगाववादी विधानों को तोड़कर वह एक शुद्र मानव जाति का निर्माण करता है, इसलिए आज के संदर्भ में इसकी उपयोगिता बढ़ गई है।

जिन दिनों कबीर दास का आविर्भाव हुआ था, उन दिनों हिंदूओं में पौराणिक मत ही प्रबल था। देश में नाना प्रकार की साधनाएँ प्रचलित थी। कोई वेद का दिवाना था, तो कोई उदासी और कई तो ऐसे थे, जो दीन बनाए फिर रहा था, तो कोई दान-पुण्य में लीन था। कई व्यक्ति ऐसे थे, जो मदिरा के सेवन ही में सब कुछ पाना चाहता था तथा कुछ लोग तंत्र-मंत्र, औषधादि की करामात को अपनाए हुआ था।

इक पठहि पाठ, इक भी उदास,
इक नगन निरन्तर रहै निवास,
इक जीग जुगुति तन खनि,
इक राम नाम संग रहे लीना।

कबीर ने अपने चतुर्दिक जो कुछ भी देखा-सुना और समझा, उसका प्रचार अपनी वाणी द्वारा जोरदार शब्दों में किया –

ऐसा जो जोग न देखा भाई, भुला फिरे लिए गफिलाई
महादेव को पंथ चलावे, ऐसा बड़ो महंत कहावै॥

कबीर दास ने जब अपने तत्कालीन समाज में प्रचलित विडम्बना देखकर चकित रह गए। समाज की इस दुहरी नीति पर उन्होंने फरमाया –

पंडित देखहु मन मुंह जानी।
कछु धै छूति कहां ते उपजी, तबहि छूति तुम मानी।

समाज में छुआछूत का प्रचार जोरों पर देखकर कबीर साहब ने उसका खंडन किया। उन्होंने पाखंडी पंडित को संबोधित करके कहा कि छुआछूत की बीमारी कहाँ से उपजी।

तुम कत ब्राह्मण हम कत सूद,
हम कत लौहू तुम कत दूध,
जो तुम बाभन बाभनि जाया,
आन घाट काहे नहि आया।

महात्मा कबीर साहब ब्राह्मण के अभिमान यह कहकर तोड़ते हैं कि अगर तुम उच्च जाति के खुद को मानते हो, तो तुम किसी दूसरे मार्ग से क्यों नहीं आए ? इस प्रकार कबीर ने समाज व्यवस्था पर नुकीले एवं मर्मभेदी अंदाज से प्रहार किया। समाज में व्याप्त आडंबर, कुरीति, व्याभिचार, झूठ और पाखंड देखकर वे उत्तेजित हो जाते और चाहते कि जन-साधारण को इस प्रकार के आडम्बर एवं विभेदों से मुक्ति मिले और उनके जीवन में सुख-आनंद का संचार हो।

महात्मा कबीर के पास अध्यात्मिक ज्ञान था और इसी ज्ञान के द्वारा वे लोगों को आगाह करते थे –

आया है सो जाएगा, राजा रंक फकीर।
एक सिंहासन चढि चलें, एक बंधे जंजीर।

अपने कर्त्तव्य के अनुसार हर व्यक्ति को फल मिलना निश्चित है। हर प्राणी को यहाँ से जाना है। समाज व्याप्त कुरीतियों करने और जन-समुदाय में सुख-शान्ति लाने के लिए कबीर एक ही वस्तु को अचूक औषधि मानते हैं, वह है आध्यात्म। वे चाहते हैं कि मानव इसका सेवन नियमित रुप से करे।

महात्मा कबीर दास के सुधार का प्रभाव जनता पर बड़ी तेजी से पड़ रहा था और वह वर्ण-व्यवस्था के तंत्र को तोड़ रहे थे, उतने ही तेजी से व्यवस्था के पक्षधरों ने उनका विरोध भी किया। संत के आस-पास, तरह-तरह के विरोधों और चुनौतियों की एक दुनिया खड़ी कर दी। उन्होंने सभी चुनौतियों का बड़ी ताकत के साथ मुकाबला किया। इसके साथ ही अपनी आवाज भी बुलंद करते रहे और विरोधियों को बड़ी फटकार लगाते रहे।

तू राम न जपहि अभागी,
वेद पुरान पढ़त अस पांडे,
खर चंदन जैसे भारा,
राम नाम तत समझत नाहीं,
अति पढ़े मुखि छारा॥

इसी प्रकार कबीर अपने नीति परक, मंगलकारी सुझावों के द्वारा जनता को आगाह करते रहे ओर चेतावनी देते रहे कि मेरी बात ध्यान से सुनो और उस पर अमल करो, इससे तुम्हारा कल्याण होगा।

घर-घर हम सबसों कही, सवद न सुने हमारा।
ते भव सागर डुबना, लख चौरासी धारा॥

कबीर साहब समाज में तुरंत परिवर्तन चाहते थे। आशानुकूल परिवर्तन नहीं होते देखकर वे व्यथित हो उठते थे। उन्हें दुख होता था कि उनकी आवाज पर उनके सुझाव पर कोई ध्यान नहीं दे रहा है।

आधुनिक संदर्भ में भी यही बात कही जा सकती है। आज भी भारतीय समाज की वही स्थिति है, जो कबीर काल में थी। सामाजिक आडंबर, भेद-भाव, ऊँच-नीच की भावना आज भी समाज में व्याप्त है। व्याभिचार और भ्रष्टाचार का बाजार गर्म है। आए दिन समाचार पत्रों आग लगी, दहेज मौत, लूट,

हत्या और आत्महत्या की खबरें छपती रहती है। समाज के सब स्तर पर यही स्थिति है। "राजकीय अस्पतालों में जो रोगी इलाज के लिए भर्ती होते हैं, उन्हें भर पेट भोजन और साधारण औषधि भी नहीं मिलती। इसके अलावे अस्पताल में कई तरह की अव्यवस्था और अनियमितता है।"

देश के संतों, चिंतकों तथा बुद्धिजीवियों ने बराबर इस बात की उद्घोषणा की है कि "नीति-विहीन शासन कभी सफल नहीं हो सकता। नीति और सदाचार अध्यात्म की जड़ है। देश की अवनति तथा सामाजिक दूरव्यवस्था का मुख्य कारण यही है कि आज हम अपनी सांस्कृतिक धरोहर को भूल कर पाश्चात्य चकाचौंध की ओर आकर्षित हो गए हैं। ऊपरी आडंबर और शान-शौकत को ही मुख्य वस्तु मान कर हम अपनी शालीनता, गरिमा तथा जीवन मूल्यों को भूल गए हैं, जिसका फल है–पतन, निराशा और दुख। आज के संसार में सब कुछ उल्टा हो रहा है और इसीलिए लोग सत्य का दर्शन नहीं कर पाते। कबीर-पंथ की परंपरा में स्वामी अलखानंद लिखते हैं –

सिंह ही से स्यार लड़ाई में जीति।
साधु करे चोरि चोर को नीति।
लड्डू लेई खात स्वाद आवे तीति।
मरीच के खात स्वाद मीठ मीति।
ऐसी ही ज्ञान देखो उल्टा रीति॥

इस नाजुक परिस्थिति से अध्यात्मिकता तथा नैतिकता ही हमें उबार सकती है। कबीर-साहित्य ऐसे ही विचारों, भावनाओं और शिक्षाओं की गहरी है। उसमें अनमोल मोती गुंथे हैं। उन्होंने मानव जीवन के सभी पक्षों को स्पर्श किया है। अतः आज की स्थिति में कबीर साहित्य हमारा मार्ग दर्शन करने में पूर्ण रुप से सक्षम है।

एक बूंद से सृष्टि रची है, को ब्रह्ममन को सुद्र।
हमहुं राम का, तुमहुं राम का, राम का सब संसार॥

कबीर का उपदेश सार्वभौम, सार्वजनिक, मानवतावादी तथा विश्वकल्याणकारी है। उन्होंने सामान्य मानव धर्म अथवा समाज की प्रतिष्ठा के लिए जिस साधन का प्रयोग किया था, वह सांसारिक न होकर आध्यात्मिक था।

आधुनिक संदर्भ में कबीर का कहा गया उपदेश सभी दृष्टियों से प्रासंगिक है। जिस ज्ञान और अध्यात्म की चर्चा आज के चिंतक और संत कर रहे हैं, वही उद्घोषणा कबीर ने पंद्रहवीं शताब्दी में की थी। अतः आज भी कबीर साहित्य

की सार्थकता और प्रासंगिकता बनी हुई है। आज के परिवेश में जरुरी है कि इसका प्रसार किया जाए, ताकि देश और समाज के लोग इससे लाभांवित हो सके।

जब कबीर दास का आविर्भाव हुआ था, उन दिनों हिंदूओं में पौराणिक मत ही प्रबल था। देश में नाना प्रकार की साधनाएँ प्रचलित थी। कोई वेद का दिवाना था, तो कोई उदासी और कई तो ऐसे थे, जो दीन बनाए फिर रहा था, तो कोई दान-पुण्य में लीन था। कई व्यक्ति ऐसे थे, जो मदिरा के सेवन ही में सब कुछ पाना चाहता था तथा कुछ लोग तंत्र-मंत्र, औषधादि की करामात को अपनाए हुआ था।

इक पठहि पाठ, इक भी उदास,
इक नगन निरन्तर रहै निवास,
इक जीग जुगुति तन खनि,
इक राम नाम संग रहे लीना।

कबीर ने अपने चतुर्दिक जो कुछ भी देखा-सुना और समझा, उसका प्रचार अपनी वाणी द्वारा जोरदार शब्दों में किया –

ऐसा जो जोग न देखा भाई, भुला फिरे लिए गफिलाई
महादेव को पंथ चलावे, ऐसा बड़ो महंत कहावै॥

कबीर दास ने जब अपने तत्कालीन समाज में प्रचलित विडम्बना देखकर चकित रह गए। समाज की इस दुहरी नीति पर उन्होंने फरमाया –

पंडित देखहु मन मुंह जानी।
कछु धै छूति कहां ते उपजी, तबहि छूति तुम मानी।

समाज में छुआछूत का प्रचार जोरों पर देखकर कबीर साहब ने उसका खंडन किया। उन्होंने पाखंडी पंडित को संबोधित करके कहा कि छुआछूत की बीमारी कहाँ से उपजी।

तुम कत ब्राह्मण हम कत सूद,
हम कत लौहू तुम कत दूध,
जो तुम बाभन बाभनि जाया,
आन घाट काहे नहि आया।

महात्मा कबीर साहब ब्राह्मण के अभिमान यह कहकर तोड़ते हैं कि अगर तुम उच्च जाति के खुद को मानते हो, तो तुम किसी दूसरे मार्ग से क्यों नहीं आए ? इस प्रकार कबीर ने समाज व्यवस्था पर नुकीले एवं मर्मभेदी अंदाज से

प्रहार किया। समाज में व्याप्त आडंबर, कुरीति, व्याभिचार, झूठ और पाखंड देखकर वे उत्तेजित हो जाते और चाहते कि जन-साधारण को इस प्रकार के आडम्बर एवं विभेदों से मुक्ति मिले और उनके जीवन में सुख-आनंद का संचार हो।

महात्मा कबीर के पास अध्यात्मिक ज्ञान था और इसी ज्ञान के द्वारा वे लोगों को आगाह करते थे –

आया है सो जाएगा, राजा रंक फकीर।
एक सिंहासन चढि चलें, एक बंधे जंजीर॥

अपने कर्त्तव्य के अनुसार हर व्यक्ति को फल मिलना निश्चित है। हर प्राणी को यहाँ से जाना है। समाज व्याप्त कुरीतियों करने और जन-समुदाय में सुख-शान्ति लाने के लिए कबीर एक ही वस्तु को अचूक औषधि मानते हैं, वह है आध्यात्म। वे चाहते हैं कि मानव इसका सेवन नियमित रुप से करे।

महात्मा कबीर दास के सुधार का प्रभाव जनता पर बड़ी तेजी से पड़ रहा था और वह वर्ण-व्यवस्था के तंत्र को तोड़ रहे थे, उतने ही तेजी से व्यवस्था के पक्षधरों ने उनका विरोध भी किया। संत के आस-पास, तरह-तरह के विरोधों और चुनौतियों की एक दुनिया खड़ी कर दी। उन्होंने सभी चुनौतियों का बड़ी ताकत के साथ मुकाबला किया। इसके साथ ही अपनी आवाज भी बुलंद करते रहे और विरोधियों को बड़ी फटकार लगाते रहे।

तू राम न जपहि अभागी,
वेद पुरान पढ़त अस पांडे,
खर चंदन जैसे भारा,
राम नाम तत समझत नाहीं,
अति पढ़े मुखि छारा॥

इसी प्रकार कबीर अपने नीति परक, मंगलकारी सुझावों के द्वारा जनता को आगाह करते रहे ओर चेतावनी देते रहे कि मेरी बात ध्यान से सुनो और उस पर अमल करो, इससे तुम्हारा कल्याण होगा।

घर-घर हम सबसों कही, सवद न सुने हमारा।
ते भव सागर डुबना, लख चौरासी धारा॥

कबीर साहब समाज में तुरंत परिवर्तन चाहते थे। आशानुकूल परिवर्तन नहीं होते देखकर वे व्यथित हो उठते थे। उन्हें दुख होता था कि उनकी आवाज पर उनके सुझाव पर कोई ध्यान नहीं दे रहा है।

आधुनिक संदर्भ में भी यही बात कही जा सकती है। आज भी भारतीय समाज की वही स्थिति है, जो कबीर काल में थी। सामाजिक आडंबर, भेद-भाव, ऊँच-नीच की भावना आज भी समाज में व्याप्त है। व्याभिचार और भ्रष्टाचार का बाजार गर्म है। आए दिन समाचार पत्रों आग लगी, दहेज मौत, लूट, हत्या और आत्महत्या की खबरें छपती रहती हैं।

समाज के सब स्तर पर यही स्थिति है। "राजकीय अस्पतालों में जो रोगी इलाज के लिए भर्ती होते हैं, उन्हें भर पेट भोजन और साधारण औषधि भी नहीं मिलती। इसके अलावे अस्पताल में कई तरह की अव्यवस्था और अनियमितता है।"

देश के संतों, चिंतकों तथा बुद्धिजीवियों ने बराबर इस बात की उद्घोषणा की है कि "नीति-विहीन शासन कभी सफल नहीं हो सकता। नीति और सदाचार अध्यात्म की जड़ है। देश की अवनति तथा सामाजिक दूरव्यवस्था का मुख्य कारण यही है कि आज हम अपनी सांस्कृतिक धरोहर को भूल कर पाश्चात्य चकाचौंध की ओर आकर्षित हो गए हैं। ऊपरी आडंबर और शान-शौकत को ही मुख्य वस्तु मान कर हम अपनी शालीनता, गरिमा तथा जीवन मूल्यों को भूल गए हैं, जिसका फल है—पतन, निराशा और दुख। आज के संसार में सब कुछ उल्टा हो रहा है और इसीलिए लोग सत्य का दर्शन नहीं कर पाते। कबीर-पंथ की परंपरा में स्वामी अलखानंद लिखते हैं –

सिंह ही से स्यार लड़ाई में जीति।
साधु करे चोरि चोर को नीति।
लड्डू लेई खात स्वाद आवे तीति।
मरीच के खात स्वाद मीठ मीति।
ऐसी ही ज्ञान देखो उल्टा रीति॥

इस नाजुक परिस्थिति से अध्यात्मिकता तथा नैतिकता ही हमें उबार सकती है। कबीर-साहित्य ऐसे ही विचारों, भावनाओं और शिक्षाओं की गहरी है। उसमें अनमोल मोती गुंथे हैं। उन्होंने मानव जीवन के सभी पक्षों को स्पर्श किया है। अतः आज की स्थिति में कबीर साहित्य हमारा मार्ग दर्शन करने में पूर्ण रुप से सक्षम है।

एक बूंद से सृष्टि रची है, को ब्रह्ममन को सुद्र।
हमहुं राम का, तुमहुं राम का, राम का सब संसार॥

कबीर का उपदेश सार्वभौम, सार्वजनिक, मानवतावादी तथा विश्वकल्याणकारी है। उन्होंने सामान्य मानव धर्म अथवा समाज की प्रतिष्ठा के लिए जिस साधन का प्रयोग किया था, वह सांसारिक न होकर आध्यात्मिक था।

आधुनिक संदर्भ में कबीर का कहा गया उपदेश सभी दृष्टियों से प्रासंगिक है। जिस ज्ञान और अध्यात्म की चर्चा आज के चिंतक और संत कर रहे हैं, वही उद्घोषणा कबीर ने पंद्रहवीं शताब्दी में की थी। अतः आज भी कबीर साहित्य की सार्थकता और प्रासंगिकता बनी हुई है। आज के परिवेश में जरुरी है कि इसका प्रसार किया जाए, ताकि देश और समाज के लोग इससे लाभांवित हो सके।

सांप्रदायिक तनाव की स्थिति आज देश में सर्वाधिक चिंतनीय है। देश में संप्रदाय के नाम पर लोगों को आपस में खूब लड़ाया जाता है। राजनैतिक दल एवं राजनेता स्वयं जातिवाद या सांप्रदायवाद के प्रतीक बन गए हैं। आज हर वर्ष देश के कुछ भागों में सांप्रदायिक दंगे का भड़क जाना और सैकड़ों बेगुनाहों का खून बह जाना, सामान्य बात हो गई है।

1947 ई. में सांप्रदायिकता को आधार बनाकर देश का विभाजन कर दिया गया। यही सांप्रदायिकता की आग लगातार बढ़ती ही गई, अब तो स्थिति इतनी अधिक उत्तेजक हो गई है कि इस ओर सभी बुद्धिजीवियों और शुभ-चिंतकों का ध्यान आकृष्ट होने लगा है। प्रत्येक साल कही-न-कहीं दंगा होता रहता है। हजारों लोग हर दंगे में मारे जाते हैं। हजारों गिरफ्तारियाँ होती है। लाखों-करोड़ों की संपत्ति जला दी जाती है। यह सब आपसी धार्मिक मतभेदों की वजह से होता है। आवश्यकता है कि सभी धर्मों के प्रति आदर की भावना रखकर, भारत के समस्त नागरिकों को बंधुत्व की भावना सहयोगपूर्वक रहने के प्रति जागरुक किया जाए।

हिंदू तुरुक की एक राह में, सतगुरु है बताई।
कहै कबीर सुनहू हो संतों, राम न कहेउ खुदाई।।

संत महात्मा कबीर ने सांप्रदायिकता का विरोध कड़े शब्दों में किया है। कबीर साहब से अधिक जोरदार शब्दों में सांप्रदायिक एकता का प्रतिपादन किसी ने नहीं किया।

सोई हिंदू सो मुसलमान, जिनका रहे इमान।
सो ब्राह्मण जो ब्राह्म गियाला, काजी जो जाने रहमान।।

महात्मा के अनुसार सच्चा हिंदू या मुसलमान वही है, जो इमानदार है और निष्ठापूर्वक अपने कर्त्तव्य का पालन करता है। सारे अनर्थों की जड़ यही बेईमानी है। आदमी बईमान हुआ, तब सब अनर्थ कामों की शुरुआत हो गई। आज समाज में चारों तरफ बेईमानी के कारण ही वातावरण दुखी और असहनीय हो रहा है। आज का मनुष्य एक ओर ईश्वर की पूजा करता है और दूसरी ओर मनुष्य का तिरस्कार करता है। प्रेम के महत्त्व को कबीर साहब इस प्रकार बताते हैं –

पोथी पढि-पढि जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई अच्छर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय॥

कबीर के अनुसार प्रेम ही ऐसा तत्त्व है, जो पारस्परिक मैत्री का भाव लाता है और कटुता को समाप्त करता है।

काहि कबीर वे दूनों भूले, रामहि किन्हु न पायो।
वे खस्सी वे गाय कटावै, वादाहि जन्म गँवायो॥
जेते औरत मरद उवासी, सो सब रुप तुम्हारा।
कबीर अल्ह राम का, सो गुरु पीर हमारा॥

हिंदू-मुस्लिम एकता के लिए कबीर के उपदेश और उनके द्वारा किया गया कार्य आज सामान्य लोगों के अंदर फैलाने और बताने आवश्यक है। कबीर ने धार्मिक रुढियों उपासना संबंधी मूढ मान्यताओं तथा मंदिर-मस्जिद विष्यक अंध आस्थाओं के अंतर्विरोधों को निर्ममतापूर्वक अस्वीकार कर दिया था।

हिंदू कहे वह राम हमारा, तुरुक कहे रहिमाना
सत गहे, सतगुरु को चीन्हे, सतनाम विश्वासा,
कहै कबीर साधन हितकारी, हम साधन के दासा।

वे कहते, प्रत्येक मानव को गुरु भक्ति और साधन का अभ्यास करना चाहिए। इस सत्य की प्राप्ति से सब अवरोध समाप्त हो जाते हैं।

जो सुख राम भजन में, वह सुख नहीं अमीरी में।

सुख का आधार धन-संपत्ति नहीं है। इसके अभाव में भी मानव सुख-शांति का जीवन जी सकता है।

चाह मिटी, चिंता मिटी मनवा बेपरवाह,
जिसको कुछ नहीं चाहिए वह शहनशाह।

वे कहते हैं, धरती पर सभी कष्टों की जड़ वासना है, इसके मिटते ही चिंता भी समाप्त हो जाती है और शांति स्वमेव आने लगती है। कबीर के कहने का तात्पर्य है कि पूजा-पाठ साधना कोई शुष्क चीज नहीं है, बल्कि इसमें आनंद

है, तृप्ति है और साथ ही सभी समस्याओं का समाधान। इसलिए इसको जीवन में सर्वोपरि स्थान देना चाहिए। साधना के प्रति लोगों के हृदय में आकर्षण भाव लाने हेतु उन्होंने अपना अनुभव बताया।

इस घट अंतर बाग बगीचे, इसी में सिरजन हारा,
इस घट अंतर सात समुदर इसी में नौ लख तारा।

गुरु के बताए साधन पर चलकर ध्यान का अभ्यास करने को वे कहते हैं। इससे दुखों का अंत होगा और अंतर प्रकाश मिलेगा। गुरु भक्ति रखकर साधन पथ पर चलनेवाले सभी लोगों को आंतरिक अनुभूति मिलती है।

कबीर का प्रेम

कंलि खोटा जग अंधेरा, शब्द न माने कोय,
जो कहा न माने, दे धक्का दुई और।

महात्मा कबीर किसी भी स्थिति में हार मानने वाले नहीं थे। वे गलत लोगों को ठीक रास्ते पर लाना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने दो-चार धक्के खाना भी पसंद था। इस प्रकार कहा जाता है कि कबीर लौह पुरुष थे। वे मानव को प्रेम को अपनाने कहते हैं। उनका कहना है कि ईश्वर का दूसरा नाम प्रेम है। इसी तत्त्व को अपनाने पर जीवन की बहुत सारी समस्याएँ स्वतः सुलझ जाती है।

मैं कहता सुरजनहारी, तू राख्यो अरुझाई राखे

कबीर साहब सदा सीधे ढ़ग से जीवन जीने की कला बताते थे। उनका कहना था कि प्रेम के अभाव में यह जीवन नारकीय बन जाता है।

कबीर प्याला प्रेम का अंतर दिया लगाया,
रोम-रोम से रमि रम्या और अमल क्या लाय,
कबीर बादल प्रेम का हम पर वरस्या आई,
अतरि भीगी आत्मा, हरी भई बन आई।

यही "प्रेम' सब कुछ है, जिसे पान कर कबीर धन्य हो गये। इस बादल रुपी प्रेम की वर्षा में स्नान कर कबीर की आत्मा तृप्त हो गई और उसका मन आनंद विभोर हो उठा। वे कहते हैं, प्रेम ही सर्व है। उसी के आधार पर व्यक्ति एक दूसरे के साथ बंधुत्व की भावना को जागृत कर सकता है। आज के परिवेश में इसी बंधुत्व की भावना के प्रसार की नितांत आवश्यकता है। कबीर साहब की वाणी आज भी हमें संदेश दे रही है कि संसार में कामयाब होने का एक मात्र मार्ग धर्म और समाज की एकता है।

संत कबीर स्वयं ऐसे परिवार में जन्में थे, जो तत्कालीन समाज व्यवस्था में अस्पृश्य था। उन्होंने स्वयं वर्ण-व्यवस्था की कटुताओं को झेला था। कबीर साहब मध्यकाल में ब्राह्मण-व्यवस्था के विरुद्ध इस विद्रोह के सबसे बड़े नेता माने जाते हैं। आपने सर्वप्रथम भक्ति परंपराओं का प्रचार किया, जोकि ब्राह्मण-व्यवस्था के विरुद्ध थी। आपने जिस तरह ब्राह्मण-व्यवस्था के गढ में काशी में रहकर, इस व्यवस्था पर प्रहार करते रहे, यह अति सराहनीय माना जाता है। यहाँ के ब्राह्मणों ने तपस्थली को ब्राह्मण और क्षत्रियों तक ही सीमित कर दिया था। कबीर साहब ने इसके खिलाफ नया मूल्य स्थापित किया। उन्होंने वहाँ, "हरिजन सई न जाति' भक्त से समान कोई दूसरी जाति नहीं है। उन्होंने स्पष्ट तौर पर कहा कि जो भक्त है, वह यदि अस्पृश्य है, तब भी ब्राह्मणों से श्रेष्ठ है। उन्होंने इस प्रकार भक्ति के हथियार से वर्णाश्रम अन्यायपूर्ण व्यवस्था पर प्रहार किया। वह नया मूल्य स्थापित करते हुए कहते हैं –

"जाति न पूछो साधु की पूछ लीजिए ज्ञान।
मोल करो तलवार का पड़ा रहन दो म्यान।।"

तत्कालीन समाज व्यवस्था में जो व्यक्ति स्वयं नहीं पाता था, उसे अंग्रेज विचारक कीलिन विल्सन ने "आउट साइडर" कहा था। भक्ति काल का प्रत्येक कवि "आउट साइंडर" कहलाया, क्योंकि ये कवि रुढियों अन्यायपूर्ण व्यवस्थाओं एवं परंपराओं को छोड़कर चलना चाहते थे। कबीर साहब मध्य काल के ऐसे पहले कवि थे, जिन्हें "आउट साइडर" कहा गया। कबीर लोक, वेद, शास्त्र तथा मंत्र को छोड़कर चलना चाहते थे। कबीर साहब को संग्राम का योद्धा कहा जाए, तो अच्छा होगा। कबीर का मानना था कि अगर भगवान को वर्ण-विचार कहना होता, तो वह जन्म से ही तीन विभाजक खींच देते। उत्पत्ति की दृष्टि से समस्त जीव समान है।

"जौ पै करता बरण बिचारै।
तौं जनमत तीनि डांडी किन सारे।।
उत्पत्ति ब्यंद कहाँ थै आया, जोति धरि अरु लगी माया।
नहिं कोइ उँचा नहिं कोइ नीचे, जाका लंड तांही का सींचा।।
जो तू वामन वमनीं जाया, तो आने बाट हवे काहे न आया।
जो तू तुरक तुरकनीं जाया तो भीतरि खतना क्यूनें करवाया।।

पंडित को वह वटूक्ति सुनाते हुए कहते हैं, जैसे गदहा चंदन का भार वहन करता है, पर उसकी सुगंधि से अभिमूढ नहीं होता। उसी तरह पंडित भी वेद पुराण पढ़कर राम नाम के वास्तविक तत्त्व नहीं पाता।

पांडे कौन कुमति तोहि लगि, तू राम न जपहि आभागा।
वेद पुराण पढ़त अस पांडे, खर चंदन जैसे भारा।।
राम नाम तत समझत नाहीं, अति अरे मुखि धारा।
वेद पढता का यह फल पाडै राबधटि देखौ रामा।।

कबीर के अनुसार ब्राह्मण को तत्त्वानुभव नहीं होने के कारण उसकी बात कोई नहीं मानता है।

पंडित संति कहि रहे, कहा न मानै कोई।
ओ अशाध एका कहै, भारी अचिरज होई।।

कबीर साहब ब्राह्मण को जाति-पाति बाँटने का जिम्मेदार मानते हुए कहते हैं कि ब्राह्मण का ज्ञान बासी है और उसका व्यक्तित्त्व पाखंडपूर्ण है –

लिखा लिखी की है नहीं, देखा देखी बात।
दुल्हा-दुल्हिन मिल गए, फीको पड़ी बारात।

तत्कालीन ब्राह्मण समाज के लोला ज्ञान पर प्रहार करते हुए वे कहते हैं–

चार यूं वेद पढ़ाई करि, हरि सूंन लाया हेत।
बाँलि कबीरा ले गया, पंडित ढूँढै खेत।।

कबीर के अनुसार मनुष्य जन्म से समान है, लेकिन समाज ने उसे रुढियों में जकड़ लिया है तथा भाँति-भाँति की क्यारियाँ गढ़ ली गई है। इस प्रकार एक क्यारी का बिखरा, दूसरी क्यारी में नहीं जा सकता है, इस प्रकार कवि जातिवाद और छुआ-छूत सबको पाखंड मानते हैं और कहते हैं –

पाड़ोसी सू रुसणां, तिल-तिल सुख की होणि।
पंडित भए सरखगी, पाँणी पीवें छाँणि।।

पंडित सरावगी हो गए हैं और पानी को छान कर पीने लगे हैं, अर्थात् वे ढ़ोंग करते हैं और दूसरे के धर्म की अनावश्यक नुक्ता-चीनी और छान-बीन करते रहते हैं। आपके अनुसार पंडित का गोरख धंधा बटमारी और डकैती है। पंडित ने इस संसार को पाषाण-मूर्तियों से भर दिया है और इसी के आधार पर पैसा कमाता है।

काजल केरि कोठरी, मसिके कर्म कपाट।
पाहनि बोई पृथमी, पंडित पाड़ी बाट।।

कबीर साहब जात-पात की तुलना में कर्म को श्रेष्ट मानते हैं –

ऊँचे कुल क्या जनमियाँ, जेकरणी उँच न होई
सोवन कलस सुरै भरया, साधू निंधा सोई॥

अपनी पूरी जिंदगी में कबीर ने सामाजिक कुरीतियों के झाड़-झंखाड़ को साफ करने और उच्चतर मानव का पथ प्रशस्त करने का प्रयास किया।

कबीर साहब का भक्ति में अत्याधिक विश्वास था। भक्ति से युक्त व्यक्ति न तो ब्राह्मण होता है और न चंडाल, बल्कि वह सिर्फ भक्त होता है। कबीर साहब ने समाज के आपसी मतभेद को मिटाकर इस प्रकार का संदेश दिया है, जैसे हल्दी पीली होती है और चुना श्वेत, पर दोनों मिलकर अपना रंग मिलाकर लाल रंग की होली में परिणत हो जाते हैं –

कबीर हरदी पीयरी, चुना उजल भाय।
राम सनेही यूँ मिले, दन्यूं बस गमाय॥

कबीर की उपर्युक्त रमैनी के अनुसार, राम के भक्त विभिन्न जातियों का परित्याग का एकाकार हो जाते हैं और वे अपने विभिन्न सांप्रदायिक भाव ईश्वर प्रेम की लालिमा में समाहित कर देते हैं। इस प्रकार कावा और काशी या राम और रहीम का भेद मिट जाता है, सब एक ही हो जाते हैं –

कावा फिर काशी भया, राम भया रहीम।
मोठ चून मैदा भया, बैठो कबीरा जीम॥

इस प्रकार कबीर साहब भक्ति के द्वारा सामाजिक पाथेवय को मिटाते हैं और मन के विधान का अतिक्रमण करने का उपदेश देते हैं।

कबीर का व्यक्तित्त्व

हिंदी साहित्य में कबीर का व्यक्तित्त्व अनुपम है। गोस्वामी तुलसीदास को छोड़ कर इतना महिमामण्डित व्यक्तित्त्व 'कबीर' के सिवा अन्य किसी का नहीं है। कबीर की उत्पत्ति के संबंध में अनेक किंवदन्तियाँ हैं। कुछ लोगों के अनुसार वे जगद्गुरु रामानन्द स्वामी के आशीर्वाद से काशी की एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। ब्राह्मणी उस नवजात शिशु को लहरतारा ताल के पास फेंक आयी। उसे नीरु नाम का जुलाहा अपने घर ले आया। उसी ने उसका पालन-पोषण किया। बाद में यही बालक कबीर कहलाया। कतिपय कबीर पन्थियों की मान्यता है कि कबीर की उत्पत्ति काशी में लहरतारा तालाब में उत्पन्न कमल के मनोहर पुष्प के ऊपर बालक के रूप में हुई। एक प्राचीन ग्रंथ के अनुसार किसी योगी के औरस तथा प्रतीति नामक देवाङ्गना के गर्भ से

भक्तराज प्रल्हाद ही संवत 1455 ज्येष्ठ शुक्ल 15 को कबीर के रूप में प्रकट हुए थे। कुछ लोगों का कहना है कि वे जन्म से मुसलमान थे और युवावस्था में स्वामी रामानन्द के प्रभाव से उन्हें हिंदु धर्म की बातें मालूम हुईं। एक दिन, एक पहर रात रहते ही कबीर पञ्जचगंगा घाट की सीढ़ियों पर गिर पड़े। रामानन्द जी गंगास्नान करने के लिये सीढ़ियाँ उतर रहे थे कि तभी उनका पैर कबीर के शरीर पर पड़ गया। उनके मुख से तत्काल राम-राम' शब्द निकल पड़ा। उसी राम को कबीर ने दीक्षा-मन्त्र मान लिया और रामानन्द जी को अपना गुरु स्वीकार कर लिया। कबीर के ही शब्दों में-'हम कासी में प्रकट भये हैं, रामानन्द चेताये'।

अन्य जनश्रुतियों से ज्ञात होता है कि कबीर ने हिंदु-मुसलमान का भेद मिटा कर हिंदु-भक्तों तथा मुसलमान फकीरों का सत्संग किया और दोनों की अच्छी बातों को हृदयंगम कर लिया।

2

कबीर का साहित्यिक परिचय

कबीर साहब निरक्षर थे। उन्होंने अपने निरक्षर होने के संबंध में स्वयं 'कबीर-बीजक' की एक साखी में बताया है। जिसमें कहा गया है कि न तो मैं ने लेखनी हाथ में लिया, न कभी कागज और स्याही का ही स्पर्श किया। चारों युगों की बातें उन्होंने केवल अपने मुँह द्वारा जता दिया है –

मसि कागद छूयो नहीं, कलम गही नहिं हाथ।
चारिक जुग को महातम, मुखहिं जनाई बात॥

संत मत के समस्त कवियों में, कबीर सबसे अधिक प्रतिभाशाली एवं मौलिक माने जाते हैं। उन्होंने कविताएँ प्रतिज्ञा करके नहीं लिखी और न उन्हें पिंगल और अलंकारों का ज्ञान था, लेकिन उन्होंने कविताएँ इतनी प्रबलता एवं उत्कृष्टता से कही है कि वे सरलता से महाकवि कहलाने के अधिकारी हैं। उनकी कविताओं में संदेश देने की प्रवृत्ति प्रधान है। ये संदेश आने वाली पीढियों के लिए प्रेरणा, पथ-प्रदर्शण तथा संवेदना की भावना सन्निहित है। अलंकारों से सुसज्जित न होते हुए भी आपके संदेश काव्यमय हैं। तात्विक विचारों को इन पद्यों के सहारे सरलतापूर्वक प्रकट कर देना ही आपका एक मात्र लक्ष्य था –

तुम्ह जिन जानों गीत हे यहु निज ब्रह्म विचार
केवल कहि समझाता, आतम साधन सार रे॥

कबीर भावना की अनुभूति से युक्त, उत्कृष्ट रहस्यवादी, जीवन का संवेदनशील संस्पर्श करनेवाले तथा मर्यादा के रक्षक कवि थे। आप अपनी काव्य कृतियों के द्वारा पथभ्रष्ट समाज को उचित मार्ग पर लाना चाहते थे।

हरि जी रहे विचारिया साखी कहो कबीर।
यौ सागर में जीव हैं जे कोई पकड़ै तीर।।

कवि के रुप में कबीर जीव के अत्यंत निकट हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं में सहजता को प्रमुख स्थान दिया है। सहजता उनकी रचनाओं की सबसे बड़ी शोभा और कला की सबसे बड़ी विशेषता मानी जाती है। उनके काव्य का आधार यथार्थ है। उन्होंने स्वयं स्पष्ट रुप से कहा है कि मैं आँख का देखा हुआ कहता हूँ और तू कागज की लेखी कहता है –

मैं कहता हूँ आखिन देखी,
तू कहता कागद की लेखी।

वे जन्म से विद्रोही, प्रकृति से समाज-सुधारक एवं प्रगतिशील दार्शनिक तथा आवश्यकतानुसार कवि थे। उन्होंने अपनी काव्य रचनाएँ इस प्रकार कही है कि उसमें आपके व्यक्तित्त्व का पूरा-पूरा प्रतिबिंब विद्यमान है।

कबीर की प्रतिपाद्य शैली को मुख्य रुप से दो भागों में बाँटा गया है – इनमें प्रथम रचनात्मक, द्वितीय आलोचनात्मक। रचनात्मक विषयों के अंतर्गत सतगुरु, नाम, विश्वास, धैर्य, दया, विचार, औदार्य, क्षमा, संतोष आदि पर व्यावहारिक शैली में भाव व्यक्त किया गया है। दूसरे पक्ष में वे आलोचक, सुधारक, पथ-प्रदर्शक और समन्वयकर्ता के रुप में दृष्टिगत होते हैं। इस पक्ष में उन्होंने चेतावनी, भेष, कुसंग, माया, मन, कपट, कनक, कामिनी आदि विषयों पर विचार प्रकट किये हैं।

काव्यरुप एवं संक्षिप्त परिचय

कबीर की रचनाओं के बारें में कहा जाता है कि संसार के वृक्षों में जितने पत्ते हैं तथा गंगा में जितने बालू-कण हैं, उतनी ही संख्या उनकी रचनाओं की है –

जेते पत्र वनस्पति औ गंगा की रेन।
पंडित विचारा का कहै, कबीर कही मुख वैन।।

विभिन्न समीक्षकों तथा विचारकों ने कबीर के विभिन्न संग्रहों का अध्ययन करके निम्नलिखित काव्यरुप पाये हैं –

1. साखी
2. पद
3. रमेनी

4. चौंतीसा
5. वावनी
6. विप्रमतीसी
7. वार
8. थिंती
9. चाँवर
10. बसंत
11. हिंडोला
12. बेलि
13. कहरा
14. विरहुली
15. उलटवाँसी

साखी

साखी रचना की परंपरा का प्रारंभ गुरु गोरखनाथ तथा नामदेव जी के समय से प्राप्त होता है। साखी काव्यरुप के अंतर्गत प्राप्त होने वाली, सबसे प्रथम रचना गोरखनाथ की जोगेश्वरी साखी है। कबीर की अभिव्यंजना शैली बड़ी शक्तिशाली है। प्रतिपाद्य के एक-एक अंग को लेकर इस निरक्षर कवि ने सैकड़ों साखियों की रचना की है। प्रत्येक साखी में अभिनवता बड़ी कुशलता से प्रकट किया गया है। उन्होंने इसका प्रयोग नीति, व्यवहार, एकता, समता, ज्ञान और वैराग्य आदि की बातों को बताने के लिए किया है। अपनी साखियों में कबीर ने दोहा छंद का प्रयोग सर्वाधिक किया है।

कबीर की साखियों पर गोरखनाथ और नामदेव जी की साखी का प्रभाव दिखाई देता है। गोरखनाथ की तरह से कबीर ने भी अपनी सखियों में दोहा जैसे छोटे छंदों में अपने उपदेश दिये।

संत कबीर की रचनाओं में साखियाँ सर्वाधिक पायी जाती है। कबीर बीजक में 353 साखियाँ, कबीर ग्रंथ वाली में 919 साखियाँ हैं। आदिग्रंथ में साखियों की संख्या 243 है, जिन्हें श्लोक कहा गया है।

प्राचीन धर्म प्रवर्तकों के द्वारा, साखी शब्द का प्रयोग किया गया। ये लोग जब अपने गुरुजनों की बात को अपने शिष्यों अथवा साधारणजनों को कहते, तो उसकी पवित्रता को बताने के लिए साखी शब्द का प्रयोग किया करते थे। वे

साखी देकर, यह सिद्ध करना चाहते थे कि इस प्रकार की दशा का अनुभव अमुक-अमुक पूर्ववर्ती गुरुजन भी कर चुके हैं। अतः प्राचीन धर्म प्रवर्तकों द्वारा प्रतिपादित ज्ञान को शिष्यों के समक्ष, साक्षी रुप में उपस्थित करते समय जिस काव्यरुप का जन्म हुआ, वह साखी कहलाया।

संत कबीर की साखियाँ, निर्गुण साक्षी के साक्षात्कार से उत्पन्न भावोन्मत्तता, उन्माद, ज्ञान और आनंद की लहरों से सराबोर है। उनकी साखियाँ ब्रह्म विद्या बोधिनी, उपनिषदों का जनसंस्करण और लोकानुभव की पिटारी है। इनमें संसार की असारता, माया मोह की मृग-तृष्णा, कामक्रोध की क्रूरता को भली-भांति दिखाया गया है। ये सांसारिक क्लेश, दुख और आपदाओं से मुक्त कराने वाली जानकारियों का भण्डार है। संत कबीर के सिद्धांतों की जानकारी का सबसे उत्तम साधन उनकी साखियाँ हैं।

साखी आंखी ग्यान को समुझि देखु मन माँहि
बिन साखी संसार का झगरा छुटत नाँहि।।

विषय की दृष्टि से कबीर साहब की सांखियों को मुख्यतः दो भागों में विभाजित किया गया है –

1. लौकिक भाव प्रधान
2. परलौकिक भाव प्रधान

लौकिक भाव प्रधान साखियाँ भी तीन प्रकार की है –

1. संतमत स्वरुप बताने वाली
2. पाखण्डों का विरोध करने वाली
3. व्यवहार प्रधान

संतमत का स्वरुप बताने वाली साखियाँ –

कबीर साहब ने अपनी कुछ साखियों में संत और संतमत के संबंध में अपने विचार प्रकट किए हैं –

निर बेरी निहकामता साई सेती नेह।
विषिया सूँन्यारा रहे संतरि को अंग एह।।

कबीर साहब की दृष्टि में संत का लक्ष्य धन संग्रह नहीं है –

सौंपापन कौ मूल है एक रुपैया रोक।
साधू है संग्रह करै, हारै हरि सा थोक।
संत व बांधै गाँठरी पेट समाता लेई।
आगे पीछे हरि खड़े जब माँगै तब दई।

संत अगर निर्धन भी हो, तो उसे मन छोटा करने की आवश्यकता नहीं है–

सठगंठी कोपीन है साधू न मानें संक।
राम अमल माता रहे गिठों इंद्र को रंक।

कबीर साहब परंपरागत रुढियों, अंधविश्वासों, मिथ्याप्रदर्शनों एवं अनुपयोगी रीति–रिवाजों के कट्टर विरोधी थे। उन्होंने हिंदू–मुसलमान दोनों में ही फैली हुई कुरीतियों का विरोध अपनी अनेक साखियों में किया है।

व्यवहार प्रधान साखियाँ

कबीर साहब की व्यवहार प्रधान साखियाँ, नीति और उपदेश प्रधान है। इसमें संसभू के प्रत्येक क्षेत्र में उचित व्यवहार की रीति बताई गई हैं। इन साखियों में मानव मात्र के कल्याणकारी अनुभव का अमृत छिपा हुआ है। पर निंदा, असत्य, वासना, धन, लोभ, क्रोध, मोह, मदमत्सर, कपट आदि का निषेध करके, वे सहिष्णुता, दया, अहिंसा, दान, धैर्य, संतोष, क्षमा, समदर्शिता, परोपकार तथा मीठे वाचन आदि के लिए आग्रह किया गया है। वे त्याज्य कुकर्मों को गिना कर बताते है –

गुआ, चोरी, मुखबरी, व्याज, घूस, परमान।
जो चाहे दीदार को एती वस्तु निवार।।

विपत्ति में धैर्य धारण करने के लिए कहते है –

देह धरे का दंड है सब काहू पै होय।
ज्ञानी भुगतै ज्ञानकरि मूरख भुगतै रोय।।

वह अपनी में बाबू संयम पर बल देते हुए कहते हैं –

ऐसी बानि बोलिए मन का आपा खोय।
ओख को सीतल करै, आपहु सीतल होय।

परलौकिक भाव प्रधान साखियाँ

संत कबीर साहब इस प्रकार की अपनी साखियों में नैतिक, अध्यात्मिक, सांसारिक, परलौकिक इत्यादि विषयों का वर्णन किया है।

कुछ साखियाँ –

राम नाम जिन चीन्हिया, झीना पं तासु।
नैन न आवै नींदरी, अंग न जायें मासु।

बिन देखे वह देसकी, बात कहे सो कूर।
आपुहि खारी खात है, बैचत फिरे कपूर।

पद (शब्द)

संत कबीर ने अपने अनुभवों, नीतियों एवं उपदेशों का वर्णन, पदों में भी किया है। पद या शब्द भी एक काव्य रुप है, जिसको प्रमुख दो भागों में बाँटा गया है –

1. लौकिक भाव प्रधान
2. परलौकिक भाव प्रधान

लौकिक भाव प्रधान पदों में सांसारिक भावों एवं विचारों का वर्णन किया गया है। इनको भी दो भागों में विभाजित किया गया है –

1. धार्मिक पाखण्डों का खंडन करने वाले पद।
2. उपदेशात्मक और नीतिपरक पद।

संत कबीर जातिवाद, ऊँच-नीच की भावना एवं दिखावटी धार्मिक क्रिया-कलापों के घोर विरोधी थे। उन्होंने विभिन्न धर्मों की प्रचलित मान्यताओं तथा उपासना पद्धतियों की अलग-अलग आलोचना की है। वे वेद और कुरान के वास्तविक ज्ञान और रहस्य को जानने पर बल देते हैं –

वेद कितेब कहौ झूठा।
झूठा जो न विचारै॥
झंखत बकत रहहु निसु बासर, मति एकौ नहिं जानी।
सकति अनुमान सुनति किरतु हो, मैं न बदौगा भाई॥
जो खुदाई तेरि सुनति सुनति करतु है, आपुहि कटि कयों न आई।
सुनति कराय तुरुक जो होना, औरति को का कहिये॥

रमैनी

रमैनी भी संत कबीर द्वारा गाया गया काव्यरुप है। इसमें चौपाई दो छंदों का प्रयोग किया गया है। रमैनी कबीर साहब की सैद्धांतिक रचनाएँ हैं। इसमें परमतत्त्व, रामभक्ति, जगत और ब्रह्म इत्यादि के बारे में विस्तारपूर्वक विचार किया गया है।

जस तू तस तोहि कोई न जान। लोक कहै सब आनाहि आना।
वो है तैसा वोही जाने। ओही आहि आहि नहिं आने॥

संत कबीर राम को सभी अवतारों से परे मानते हैं –

ना दसरथ धरि औतरि आवा।
ना लंका का राव सतावा।।
अंतर जोति सबद एक नारी। हरि ब्रह्मा ताके त्रिपुरारी।।
ते तिरिये भग लिंग अनंता। तेउ न जाने आदि औ अंतर।।
एक रमैनी में वे मुसलमानों से प्रश्न पूछते हैं।
दर की बात कहाँ दरबेसा। बादशाह है कवने भेष।
कहां कंच कहँ करै मुकाया। मैं तोहि पूंछा मुसलमाना।।
लाल गरेद की नाना बना। कवर सुरहि को करहु सलाया।।
काजी काज करहु तुम कैसा। घर-घर जबह करवाहु भैसा।।

चौंतीसा

चौंतीसा नामक काव्यरुप केवल 'कबीर बीजक' में ही प्रयोग किया गया है। इसमें देवनागरी वर्णमाला के स्वरों को छोड़कर, केवल व्यंजनों के आधार पर रचनाएँ की गई हैं –

पापा पाप करै सम कोई। पाप के करे धरम नहिं होई।
पापा करै सुनहु रे भाई। हमरे से इन किछवो न पाई।
जो तन त्रिभुवन माहिं छिपावै। तत्तहि मिले तत्त सो पावै।
थाथा थाह थाहि नहिं जाई। इथिर ऊथिर नाहिं रहाई।

बावनी

बावनी वह काव्यरुप है, जिसकी द्विपदियों का प्रारंभ नागरी लिपि के बावन वर्णों में से प्रत्येक के साथ क्रमशः होता है। बावनी को इसके संगीतनुसार गाया जाने का रिवाज पाया जाता है। विषय की दृष्टि से यह रचनाएँ अध्यात्मिकता से परिपूर्ण ज्ञात होता है।

ब्राह्मण होके ब्रह्म न जानै। घर महँ जग्य प्रतिग्रह आनै।।
जे सिरजा तेहि नहिं पहचानैं। करम भरम ले बैठि बखानै।
ग्रहन अमावस अवर दुईजा।
सांती पांति प्रयोजन पुजा।।

विप्रमतीसी

विप्रमतीसी नामक काव्य रुप भी केवल 'कबीर बीजक' में पाया जाता है। इसमें ब्राह्मणों के दपं तथा मिथ्याभिमान की आलोचना की गई है। इसका संबंध विप्रमति (ब्राह्मणों की बुद्धि) से बताया जाता है।

ब्राह्मणों की मति की आलोचना करने के लिए, तीस पंक्तियों में गठित काव्यरुप को विप्रमतीसी कहा गया है।

वार

सप्ताह के सातों वारों (दिनों) के नामों को क्रमशः लेकर, की गई उपदेशात्मक रचनाओं वालों काव्यरुप को 'वार' कहा गया है। यह काव्य रुप की रचना केवल आदिग्रंथ में ही प्राप्त होती है।

थिंती

इस काव्य रुप का प्रयोग तिथियों के अनुसार छंद रचना करके साधना की बातें बताने के लिए किया गया है। संत कबीर का यह काव्य रुप भी केवल आदिग्रंथ में पाया जा सकता है।

चाँचर

चाँचर बहुत प्राचीन काल से प्रचलित काव्यरुप है। कालीदास तथा बाणभट्ट की रचनाओं में चर्चरी गान का उल्लेख मिलता है। प्राचीन काल में इसको चर्चरी या चाँचरी कहा जाता था। संत कबीर ने भी अपनी रचनाओं में इसको अपनाया है। 'कबीर बीजक' में यह काव्य रुप प्राप्त होता है। कहा जाता है कि कबीर के समय में इसका पूर्ण प्रचलन था। कबीर ने इसका प्रयोग अध्यात्मिक उपदेशों को साधारण जन को पहुँचनें के लिए किया है।

जारहु जगका नेहरा, मन का बौहरा हो।
जामें सोग संतान, समुझु मन बोरा हो।
तन धन सों का गर्वसी, मन बोरा हो।
भसम-किरिमि जाकि, समुझु मन बौरा हो।
बिना मेवका देव धरा, मन बौरा हो।
बिनु करगिल की इंट, समुझु मन बौरा हो।

बसंत

संत कबीर साहब का एक अन्य काव्यरुप बसंत है। 'बीजक', 'आदिग्रंथ' और 'कबीर ग्रंथावली' तीनों में इसको देखा जा सकता है। बसंत तू में, अभितोल्लास के साथ गाई जाने वाली पद्यों को फागु, धमार, होली या बसंत कहा जाता है। लोकप्रचलित काव्यरुप को ग्रहण कर, अपने उद्देश्य को जनसाधारण तक पहुँचाने के लिए किया है। एक पत्नी अपने पति की प्रशंसा करते हुए कहती है –

भाई मोर मनुसा अती सुजान, धद्य कुटि-कुटि करत बिदान।
बड़े भोर उठि आँगन बाढ़ु, बड़े खाँच ले गोबर काढ़
बासि-भात मनुसे लीहल खाय, बड़ धोला ले पानी को गाय
अपने तृर्ष्या बाधों पाट, ले बेचौंगी हाटे हाट
कहँहि कबीर ये हरिक काज, जोइया के डिंग रहिकवनि लाज

हिंडोला

सावन के महिने में महिलाएँ हिंडोला झुलने के साथ-साथ, गीत भी गाती है। इसी गीत को अनेक स्थानों पर हिंडोला के नाम से जाना जाता है। संत कबीर ने इसी जनप्रचलित काव्यरुप को अपने ज्ञानोपदेश का साधन बनाया है। वह पूरे संसार को एक हिंडोला मानते हैं। वे इस प्रकार वर्णन करते हैं –

भ्रम का हिंडोला बना हुआ है। पाप पुण्य के खंभे हैं। माया ही मेरु हैं, लोभ का मरुषा है विषय का भंवरा, शुभ-अशुभ की रस्सी तथा कर्म की पटरी लगी हुई है। इस प्रकार कबीर साहब समस्त सृष्टि को इस हिंडोले पर झुलते हुए दिखाना चाहते हैं –

भरम-हिंडोला ना, झुलै सग जग आय।
पाप-पुण्य के खंभा दोऊ मेरु माया मोह।
लोभ मरुवा विष भँवरा, काम कीला ठानि।
सुभ-असुभ बनाय डांडी, गहैं दोनों पानि।
काम पटरिया बैठिके, को कोन झुलै आनि।
झुले तो गन गंधर्व मुनिवर,झुलै सुरपति इंद
झुलै तो नारद सारदा, झुलै व्यास फनींद।

बेलि

संत कबीर की बेलि उपदेश प्रधान काव्यरुप है। इसके अंतर्गत सांसारिक मोह ममता में फँसे जीव को उपदेश दिया गया है। 'कबीर बीजक' में दो रचनाएँ बेलि नाम से जानी जाती है। इसकी पंक्ति के अंत में 'हो रमैया राम' टेक को बार-बार दुहराया गया है।

कबीर साहब की एक बेलि –

हंसा सरवर सरीर में, हो रमैया राम।
जगत चोर घर मूसे, हो रमैया राम।
जो जागल सो भागल हो, रमैया राम।
सावेत गेल बिगोय, हो रमैया राम।

कहरा

कहरा काव्यरुप में क्षणिक संसार के मोह को त्याग का राम का भजन करने पर बल दिया जाता है। इसके अंतर्गत यह बताया जाता है कि राम के अतिरिक्त अन्य देवी-देवताओं की पूजा करना व्यर्थ है। यह कबीर की रचनाओं का जन-प्रचलित रुप है –

रामनाम को संबहु बीरा, दूरि नाहिं दूरि आसा हो।
और देवका पूजहु बौरे, ई सम झूठी आसा हो।
उपर उ कहा भौ बौरे, भीटर अजदूँ कारो हो।
तनके बिरघ कहा भौ वौरे, मनुपा अजहूँ बारो हो।

बिरहुली

बिरहुली का अर्थ सर्पिणी है। यह शब्द बिरहुला से बना है, जिसका अर्थ सर्प होता है। यह शब्द लोक में सर्प के विष को दूर करने वाले गायन के लिए प्रयुक्त होता था। यह गरुड़ मंत्र का प्राकृत नाम है। गाँव में इस प्रकार के गीतों को विरहुली कहा जाता है। कबीर साहब की बिरहुली में विषहर और विरहुली दोनों शब्दों का प्रयोग किया गया है। मनरुपी सर्प के डस लेने पर कबीर ने बिरहुली कहा –

आदि अंत नहिं होत बिरहुली। नहिं जरि पलौ पेड़ बिरहुली।
निसु बासर नहिं होत बिरहुली। पावन पानि नहिं भूल बिरहुली।

ब्रह्मादिक सनकादि बिरहुली। कथिगेल जोग आपार बिरहुली।
बिषहा मंत्र ने मानै बिरहुली। गरुड़ बोले आपार बिरहुली।

उलटवाँसी

बंधी बधाई विशिष्ट अभिव्यंजना शैली के रुप में, उलटवाँसी भी एक काव्यरुप है। इसमें आटयात्मिक बातों का लोक विपरीत ढ़ंग से वर्णन किया जाता है। इसमें वक्तव्य विषय की प्रस्तुत करने का एक विशष ढ़ंग होता है –

तन खोजै तब पावै रे।
उलटी चाल चले गे प्राणी, सो सरजै घर आवेरो

धर्म विरोध संबंधी उलटवाँसिया

अम्बर बरसै धरती भीजे, यहु जानैं सब कोई।
धरती बरसे अम्बर भीजे, बूझे बिरला कोई।
मैं सामने पीव गोहनि आई।
पंच जना मिलिमंडप छायौ, तीन जनां मिलि लगन लिखाई।

सामान्यरुप में कबीर साहब ने जन–प्रचलित काव्यरुप को अपनाया है। जन–प्रचलित होने के कारण ही सिंहों, माथों, संतों और भक्तों के द्वारा इनको ग्रहण किया गया।

विचारों और भक्तों के साथ ही, काव्यरुपों के क्षेत्र में भी कबीर साहब को आदर्श गुरु तथा मार्गदर्शक माना गया है। परवर्ती संतों तथा भक्तों ने उनके विचारों और भावों के साथ–साथ काव्यरुपों को भी अपनाया। कबीर साहब ने इन काव्यरुपों को अपना करके महान् और अमर बना दिया।

कबीर के काव्य में दाम्पत्य एवं वात्सल्य के द्योतक प्रतीक पाये जाते हैं। उनकी रचनाओं में सांकेतिक, प्रतीक, पारिभाषिक प्रतीक, संख्यामूलक प्रतीक, रुपात्मक प्रतीक तथा प्रतीकात्मक उलटवाँसियों के सुंदर उदाहरण पाए जाते हैं।

3

कबीर की प्रेम साधना

मध्यकालीन कवियों ने प्रेम को सबसे बड़ा पुरुषार्थ माना था। समाज में व्याप्त क्यारियों को ध्वस्त करने के लिए इन कवियों ने प्रेम की शरण ली थी। कबीर साहब ने इस समस्त काल में प्रेम को प्रतिष्ठा प्रदान किया एवं शास्त्र-ज्ञान को तिरस्कार किया।

मासि कागद छूओं नहिं,
कलम गहयों नहिं हाथ।

कबीर साहब पहले भारतीय व हिंदी कवि हैं, जो प्रेम की महिमा का बखान इस प्रकार करते हैं –

पोथी पढ़ी-पढ़ी जग मुआ, पंडित भया न कोई।
ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय॥

कबीर के अनुसार ब्राह्मण और चंडाल की मंद-बुद्धि रखने वाला व्यक्ति परमात्मा की अनुभूति नहीं कर सकता है, जो व्यक्ति इंसान से प्रेम नहीं कर सकता, वह भगवान से प्रेम करने का सामर्थ्य नहीं हो सकता। जो व्यक्ति मनुष्य और मनुष्य में भेद करता है, वह मानव की महिमा को तिरस्कार करता है। वे कहते हैं मानव की महिमा अहम् बढ़ाने में नहीं है, वरन् विनीत बनने में है –

प्रेम न खेती उपजै, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा प्रजा जेहि रुचे, सीस देहि ले जाय।

कबीर साहब ने प्रेम की जो परंपरा चलाई, वह बाद के सभी भारतीय कहीं-न-कहीं प्रभावित करता रहा है। इसी पथ पर चलकर रवीन्द्रनाथ टैगोर एक महान् व्यक्तित्त्व के मालिक हुए।

कबीर भक्ति की साधना

कबीर के विचार से यह जीवन, संसार तथा उसके संपूर्ण सुख क्षणिक है। इनके पीछे भागना व्यर्थ में समय को गुजारना है। कबीर के अनुसार यह संसार दुखों का मूल है। सुख का वास्तविक मूल केवल आनंदस्वरुप राम है। इसकी कृपा के बिना, जन्म-मरण तथा तज्जन्य सांसारिक दु:खों से मुक्ति नहीं मिल सकती। यही कारण है कि कबीर साहब राम की भक्ति पर अत्यधिक बल देते हैं और कहते हैं कि सब कुछ त्याग का राम का भजन करना चाहिए।

सरबु तिआगि भजु केवल राम कबीर कहते हैं कि राम या परमात्मा की भक्ति से ही माया का प्रभाव नष्ट हो सकता है तथा बिना हरि की भक्ति के कभी दुखों से मुक्ति नहीं हो सकती है।

बिनु हरि भगति न मुक्ति हाइ, इउ कहि रमें कबीर

परंतु कबीर की दृष्टि से भक्ति पूर्णत: निष्काम होनी चाहिए, वे हरि से धन, संतान कोई अन्य सांसारिक सुख माँगने के विरुद्ध हैं, वे तो भक्ति के द्वारा स्वर्ग भी नहीं माँगना चाहते हैं।

कबीर के राम से मुराद राजा दशरथ के पुत्र राजा राम नहीं हैं, बल्कि घट-घट में निवास करने वाले निगुर्ण, निरंजन, निराकार, सत्यस्वरुप एवं आनंदस्वरुप राम हैं। उन्हें परमात्मा, हरि, गोविंद, मुरारी, अल्लाह, खुदा किसी भी नाम से पुकारा जा सकता है। उन्हें ढूँढ़ने के लिए वन में भटकने की आवश्यकता नहीं है, भक्ति और युक्ति से उनका हृदय में साक्षात्कार किया जा सकता है। कबीर के मतानुसार आनंदस्वरुप राम और मनुष्य का आत्मा कोई दो भिन्न तत्त्व नहीं हैं –

जल में कुंभ-कुंभ में जल है बाहरि भीतरि पानी।
फुटा कुंभ जल जलाहि समाना यहुतत कधैं गियानी।

कबीर कहते हैं – साधक अपना अहंभाव खोकर सागर में बूँद की तरह परमात्मा से मिल सकता है –

हंरत हंरत हे सखी, गया कबीर हिराई।
बूँद समानी समद में, सोकत हरि जाइ॥

कबीर के अनुसार मनुष्य को स्वयं यह विचार करना चाहिए कि दु:ख का वास्तविक कारण क्या है? सुख का मूल क्या है और उसको पाने का उपाय क्या है ?

ज्ञानदाता गुरु को कबीरदास अत्यंत पूज्य मानते हैं, वो तो गुरु और गोविंद में कोई अंतर नहीं मानते हैं –

गुर गोविंद तौ एक है, दूजा यहू आकार।
आपा भेट जीवत मरै, तौ पावै करतार॥

कबीर की भक्ति साधना में वेद शास्त्र के ज्ञान यज्ञ, तीर्थ, व्रत, मूर्ति पूजा आदि की कोई आवश्यकता नहीं है।

4

कबीर की साखी

सतगुरु सवाँ न को सगा, सोधी सई न दाति।
हरिजी सवाँ न को हितू, हरिजन सई न जाति।।1।।

सद्गुरु के समान कोई सगा नहीं है। शुद्धि के समान कोई दान नहीं है। इस शुद्धि के समान दूसरा कोई दान नहीं हो सकता। हरि के समान कोई हितकारी नहीं है, हरि सेवक के समान कोई जाति नहीं है।

बलिहारी गुरु आपकी, घरी घरी सौ बार।
मानुष तैं देवता किया, करत न लागी बार।।2।।

मैं अपने गुरु पर प्रत्येक क्षण सैकड़ों बार न्यौछावर जाता हूँ, जिसने मुझको बिना विलम्ब के मनुष्य से देवता कर दिया।

सतगुरु की महिमा अनँत, अनँत किया उपगार।
लोचन अनँत उघारिया, अनँत दिखावनहार।।3।।

सद्गुरु की महिमा अनन्त है। उसका उपकार भी अनन्त है। उसने मेरी अनन्त दृष्टि खोल दी, जिससे मुझे उस अनन्त प्रभु का दर्शन प्राप्त हो गया।

राम नाम कै पटंतरे, देबे कौं कुछ नाहिं।
क्या लै गुरु संतोषिए, हौंस रही मन माँहि।।4।।

गुरु ने मुझे राम नाम का ऐसा दान दिया है कि मैं उसकी तुलना में कोई भी दक्षिणा देने में असमर्थ हूँ।

सतगुरु कै सदकै करूँ, दिल अपनीं का साँच।
कलिजुग हम सौं लड़ि पड़ा, मुहकम मेरा बाँच।।5।।

सद्गुरु के प्रति सच्चा समर्पण करने के बाद कलियुग के विकार मुझे विचलित न कर सके और मैंने कलियुग पर विजय प्राप्त कर ली।

सतगुरु शब्द कमान ले, बाहन लागे तीर।
एक जु बाहा प्रीति सों, भीतर बिंधा शरीर।।6।।

मेरे शरीर के अन्दर (अन्तरात्मा में) सद्गुरु के प्रेमपूर्ण वचन बाण की भाँति प्रवेश कर चुके हैं, जिससे मुझे आत्म-ज्ञान प्राप्त हो गया है।

सतगुरु साँचा सूरिवाँ, सबद जु बाह्या एक।
लागत ही भैं मिलि गया, पड्या कलेजै छेक।।7।।

सद्गुरु सच्चे वीर हैं। उन्होंने अपने शब्दबाण द्वारा मेरे हृदय पर गहरा प्रभाव डाला है।

पीछैं लागा जाइ था, लोक वेद के साथि।
आगैं थैं सतगुर मिल्या, दीपक दीया हाथि।।8।।

मैं अज्ञान रूपी अन्धकार में भटकता हुआ लोक और वेदों में सत्य खोज रहा था। मुझे भटकते देखकर मेरे सद्गुरु ने मेरे हाथ में ज्ञानरूपी दीपक दे दिया, जिससे मैं सहज ही सत्य को देखने में समर्थ हो गया।

दीपक दीया तेल भरि, बाती दई अघट्ट।
पूरा किया बिसाहना, बहुरि न आँवौं हट्ट।।9।।

कबीर दास जी कहते हैं कि अब मुझे पुनः इस जन्म-मरण रूपी संसार के बाजार में आने की आवश्यक्ता नहीं है, क्योंकि मुझे सद्गुरु से ज्ञान प्राप्त हो चुका है।

ग्यान प्रकासा गुरु मिला, सों जिनि बीसरिं जाइ।
जब गोविंद कृपा करी, तब गुर मिलिया आई।।10।।

गुरु द्वारा प्रदत्त सच्चे ज्ञान को मैं भुल न जाऊँ ऐसा प्रयास मुझे करना है क्योंकि ईश्वर की कृपा से ही सच्चे गुरु मिलते हैं।

कबीर गुर गरवा मिल्या, रलि गया आटैं लौंन।
जाति पाँति कुल सब मिटे, नाँव धरौगे कौंन।।11।।

कबीर कहते हैं कि मैं और मेरे गुरु आटे और नमक की तरह मिलकर एक हो गये हैं। अब मेरे लिये जाति-पाति और नाम का कोई महत्त्व नहीं रह गया है।

जाका गुरु भी अँधला, चेला खरा निरंध।
अंधहि अंधा ठेलिया, दोनों कूप पडंत।।12।।

अज्ञानी गुरु का शिष्य भी अज्ञानी ही होगा। ऐसी स्थिति में दोनों ही नष्ट होंगे।

नाँ गुर मिल्या न सिष भया, लालच खेल्याडाव।
दोनौं बूड़े धार मैं, चढ़ि पाथर की नाव॥13॥

साधना की सफलता के लिए ज्ञानी गुरु तथा निष्ठावान साधक का संयोग आवश्यक है। ऐसा संयोग न होने पर दोनों की ही दुर्गति होती है। जैसे कोई पत्थर की नाव पर चढ़ कर नदी पार करना चाहे।

चौसठि दीवा जोइ करि, चौदह चंदा माँहि।
तिहि घर किसकौ चाँन्दना, जिहि घर गोविंद नाँहि॥14॥

ईश्वर भक्ति के बिना केवल कलाओं और विद्याओं की निपुणता मात्र से मनुष्य का कल्याण सम्भव नहीं है।

भली भई जु गुर मिल्या, नातर होती हानि।
दीपक जोति पतंग ज्यूँ, पड़ता आप निदान॥15॥

कबीर दास जी कहते हैं कि सौभाग्यवश मुझे गुरु मिल गया अन्यथा मेरा जीवन व्यर्थ ही जाता तथा मैं सांसारिक आकर्षणों में पड़कर नष्ट हो जाता।

माया दीपक नर पतंग, भ्रमि भ्रमि इवैं पडंत।
कहै कबीर गुर ग्यान तैं, एक आध उबरंत॥16॥

माया का आकर्षण इतना प्रबल है कि कोई विरला ही गुरु कृपा से इससे बच पाता है।

संसै खाया सकल जग, संसा किनहुँ न खद्ध।
जे बेधे गुरु अष्षिरां, तिनि संसा चुनिचुनि खद्ध॥17॥

अधिकांश मनुष्य संशय से ग्रस्त रहते हैं, किन्तु गुरु उपदेश से संशय का नाश संभव है।

सतगुर मिल्या त का भया, जे मनि पाड़ी भोल।
पांसि विनंठा कप्पड़ा, क्या करै बिचारी चोल॥18॥

सद्गुरु मिलने पर भी यह आवश्यक है कि साधना द्वारा मन को निर्मल किया जाय अन्यथा गुरु मिलन का संयोग भी व्यर्थ चला जाता है।

बूड़ा था पै ऊबरा, गुरु की लहरि चमंकि।
भेरा देख्या जरजरा, (तब) ऊतरि पड़े फरंकि॥19॥

कबीर दास जी कहते हैं कि कर्मकाण्ड रूपी नाव से भवसागर पार करना कठिन था। अत: मैंने कर्मकाण्ड छोड़कर गुरु द्वारा बताये गये मार्ग से आसानी से सिद्धि प्राप्त कर ली।

गुरु गोविंद तौ एक है, दूजा यहु आकार।
आपा मेट जीवत मरै, तौ पावै करतार।।20।।

गुरु और ईश्वर में कोई भेद नहीं है, जो साधक अहंता का भाव त्याग देता है वह मोक्ष को प्राप्त करता है।

कबीर सतगुर ना मिल्या, रही अधूरी सीख।
स्वाँग जती का पहिरि करि, घरि-घरि माँगे भीख।।21।।

सद्गुरु के मार्गदर्शन के अभाव में साधना अधूरी रह जाती है और ऐसे लोग संन्यासी का वेश बनाकर केवल भिक्षा माँगते रहते हैं।

सतगुर साँचा, सूरिवाँ, तातैं लोहि लुहार।
कसनी दे कंचन किया, ताई लिया ततसार।।22।।

इस साखी में कबीर दास जी ने सद्गुरु के लिए सोनार और लोहार का दृष्टान्त दिया है। सोनार की भाँति गुरु शिष्य को साधना की कसौटी पर परखता है फिर लोहार की भाँति तपाकर शिष्य के मन को सही आकार देता है।

निहचल निधि मिलाइ तत, सतगुर साहस धीर।
निपजी मैं साझी घना, बाँटे नहीं कबीर।।23।।

कबीर दास जी कहते हैं कि सद्गुरु की कृपा से आत्मज्ञान का आनन्द मुझे मिला है, किन्तु चाह कर भी मैं इस आनन्द को दूसरों के साथ बाँट नहीं सकता, क्योंकि आत्मानुभूति के लिए व्यक्ति को स्वयं साधना करनी पड़ती है।

सतगुर हम सूँ रीझि करि, कहा एक परसंग।
बरसा बादल प्रेम का, भीजि गया सब अंग।।24।।

सद्गुरु ने प्रसन्न होकर हमसे एक रहस्य की बात बतलायी, जिससे प्रेम का बादल इस प्रकार बरसा कि हम उसमें भींग गये।

कबीर बादल प्रेम का, हम परि बरस्या आइ।
अंतरि भीगी आतमाँ, हरी भई बनराई।।25।।

कबीर कहते हैं कि सद्गुरु के बताये हुए मार्ग से प्रेम का बादल उमड़कर हमारे ऊपर बरसने लगा। हमारी अन्तरात्मा भींग गयी और जीवनरूपी वनराशि हरी हो गयी।

:: सुमिरन ::

कबीर कहता जात है, सुनता है सब कोइ।
राम कहें भल होइगा, नहिं तर भला न होइ।।26।।

कबीरदास कहते हैं कि मैं कहता जाता हूँ अर्थात् बराबर कहता रहा हूँ और सभी मेरी बात सुनते भी हैं, किन्तु मेरे उपदेश के अनुरूप कोई आचरण नहीं करता। मेरा कहना यही है कि प्रभु के स्मरण से ही कल्याण होगा और किसी प्रकार से कल्याण नहीं हो सकता।

कबीर कहै मैं कथि गया, कथि गये ब्रह्म महेस।
राम नाम ततसार है, सब काहू उपदेस॥27॥

कबीर कहते हैं कि ब्रह्मा और शिव ने सारे संसार को एक मुख्य उपदेश दिया है और मैं भी वही कहता हूँ कि राम-नाम ही वास्तव में सार वस्तु है।

तत्त तिलक तिहुँ लोक मैं, रामनाम निज सार।
जन कबीर मस्तक दिया, सोभा अधिक अपार॥28॥

तीनों लोकों में श्रेष्ठ तत्त्व रामनाम है और वही अपना भी सार है। भक्त कबीर ने अपने मस्तक पर उसको धारण कर लिया और इससे उनके जीवन में अपार शोभा आ गयी।

भगति भजन हरि नाँव है, दूजा दुक्ख अपार।
मनसा वाचा कर्मना, कबीर सुमिरन सार॥29॥

प्रभु की भक्ति और उनके नाम का भजन (जप) यही वस्तुतः सार है और सब बातें अपार दुःख हैं। कबीर का यह कहना है कि मन, वचन और कर्म से प्रभु का स्मरण ही जीवन का सार है।

चिंता तौ हरि नाँव की, और न चितवै दास।
जे कछु चितवैं राम बिन, सोइ काल की पास॥30॥

दास कबीर कहते हैं कि मैं तो केवल हरि नाम का चिन्तन करता हूँ और किसी वस्तु का चिन्तन नहीं करता। जो लोग राम को छोड़कर और कुछ चिन्तन करते हैं, वे बन्धन और मृत्यु में फँसते हैं।

मेरा मन सुमिरै राम को, मेरा मन रामहि आहि।
अब मन रामहिं रहा, सीस नवावौं काहि॥31॥

मेरा मन राम का स्मरण करते-करते राममय हो गया। ऐसी स्थिति में अब मैं किसको नमस्कार करूँ?

तूँ तूँ करता तू भया, मुझ मैं रही न हूँ।
वारी फेरी बलि गई, जित देखौं तित तूँ॥32॥

मुझमें अहंभाव समाप्त हो गया। मैं पूर्ण रूप से तेरे ऊपर न्यौछावर हो गया हूँ और अब जिधर देखता हूँ, उधर तू ही तू दिखलाई देता है अर्थात् सारा जगत् ब्रह्ममय हो गया है।

कबीर निरभै राम जपु, जब लगि दीवै बाति।
तेल धटै बाती बुझै, (तब) सोवैगा दिन राति।।33।।

कबीर कहते हैं कि जब एक शरीर रूपी दीपक में प्राण रूपी वर्तिका विद्यमान है अर्थात् जब तक जीवन है, तब तक निर्भय होकर राम नाम का स्मरण करो। जब तेल घटने पर बत्ती बुझ जायेगी अर्थात् शक्ति क्षीण होने पर जब जीवन समाप्त हो जायेगा तब तो तू दिन-रात सोयेगा ही अर्थात् मृत हो जाने पर जब तेरा शरीर निश्चेतन हो जायेगा, तब तू क्या स्मरण करेगा ?

कबीर सूता क्या करै, जागि न जपै मुरारि।
इक दिन सोवन होइगा, लम्बे पाँव पसारि।।34।।

कबीर जीव को चेतावनी देते हैं कि हे जीव ! तू अज्ञान-निद्रा में सोते हुए क्या कर रहा है? जग कर अर्थात् इस निद्रा को त्याग कर भगवान का स्मरण कर। एक दिन तो तुझे पैर फैलाकर चिर निन्द्रा में मग्न होना ही है।

कबीर सूता क्या करै, गुन गोविंद के गाई।
तेरे सिर पर जम खड़ा, खरच कदे का खाई।।35।।

कबीर कहते हैं कि हे जीव ! तू अज्ञान-निद्रा में सोया हुआ क्या कर रहा है? तू प्रभु का गुणगान क्यों नहीं करता है? तेरे सिर पर यमराज खड़ा है। तू भी काल-ग्रस्त हो जाएगा, बचेगा नहीं। इसलिए जीवन रहते हुए सचेत होकर भगवान का स्मरण कर।

केसौ कहि कहि कूकिए, नाँ सोइय असरार।
राति दिवस कै कूकनै, कबहुँक लगे पुकार।।36।।

प्रभु को निरन्तर आर्त्त स्वर से पुकारते रहो। घोर निद्रा में न पड़े रहो। दिन-रात की पुकार से, सम्भव है, कभी सुनवाई हो जाय और तुम्हारी पुकार लग जाये।

जिहि घटि प्रीति न प्रेम रस, फुनि रसना नहिं राम।
ते नर इस संसार में, उपजि षये बेकाम।।37।।

जिनके हृदय में न प्रेम है, न प्रेम का आस्वाद और जिनकी जिह्वा पर राम नाम भी नहीं है, वे मनुष्य इस संसार में व्यर्थ पैदा होकर नष्ट होते हैं।

कबीर प्रेम न चाषिया, चषि न लीया साव।
सूने घर का पाहुनाँ ज्यूँ आया त्यूँ जाव।।38।।

कबीर कहते है कि जिसने प्रभु के प्रेम का अनुभव नहीं किया उसका इस संसार में जन्म लेना और मर जाना सूने घर में अतिथि के आने-जाने के समान है।

पहिलै बुरा कमाई करि, बाँधी विष की पोट।
कोटि करम फिल पलक मैं, (जब) आया हरि की ओट।।39।।

पहले अर्थात् पूर्व जन्म में अनेक पाप-कर्म करके जीव ने जो विष की गठरी बाँध रखी है, प्रभु की शरण में जाने पर वह उसको क्षण भर में फेंक कर शुद्ध हो जाता है।

कोटि क्रम पेलै पलक मैं, जे रंचक आवै नाउँ।
अनेक जुग जो पुन्नि करै, नहीं राम बिन ठाउँ।।40।।

यदि प्रभु का तनिक भी नाम-स्मरण किया जाये तो वह पूर्व जन्म के करोड़ों दुष्कर्मों को क्षण भर में ढकेल कर नष्ट कर सकता है। किन्तु-भक्ति के बिना मनुष्य चाहे अनेक युगों तक पुण्य करे, उसको कोई ठौर-ठिकाना नहीं मिल सकता है।

जिहि हरि जैसा जानियां, तिनकौ तैसा लाभ।
ओसों प्यास न भाजई, जब लगि धसै न आभ।।41।।

प्रभु को जिसने जिस प्रकार पहचाना है, उसी प्रकार उसको लाभ प्राप्त होता है। जब तक प्यासा पानी में डुबकी नहीं लगाता, तब तक केवल ओस चाटने से प्यास नहीं जाती।

राम पियारा छांडि करि, करै आन का जाप।
वेस्या केरा पूत ज्यौं, कहै कौन सौं बाप।।42।।

जो परम मित्र परमात्मा राम को छोड़कर अन्य देव-देवी का जप करता है, वह वेश्या के पुत्र के समान है, जो अपने वास्तविक पिता को नहीं जानता। वस्तुतः परमात्मा ही सबका पिता है, अन्य कोई नहीं।

कबीर आपन राम कहि, औरन राम कहाइ।
जिहि मुखि राम न ऊचरै, तिहि मुख फेरि कहाइ।।43।।

कबीर कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं राम का जप करना ही चाहिए, उसे औरों से भी 'राम' कहलवाना चाहिए। जो व्यक्ति राम नाम का उच्चारण नहीं करता है, उससे बार-बार कहलाना चाहिए।

जैसे माया मन रमैं, यौं जे राम रमाइ।
(तौ) तारा मंडल बेधि कै, जहाँ के सो तहँ जाइ।।44।।

जिस प्रकार जीव का मन माया में रमण करता है, उसी प्रकार यदि उसका मन राम में रमण करे तो वह ब्रह्म में लीन हो सकता है।

लूटि सकै तौ लूटि लै, राम नाम की लूटि।
फिर पाछे पछिताहुगे, यहु तन जैहै छूटि।।45।।

मानव शरीर ही एक ऐसी योनि है जिसमें साधना सम्भव है। जब यह शरीर छूट जाएगा तो यह आध्यात्मिक साधना संभव न हो सकेगी और तब पछताओगे कि एक ईश्वर प्रदत्त अवसर को गँवा दिया।

लूटि सकै तौ लूटियौ, राम नाम भंडार।
काल कंठ तैं गहेगा, रूँधै दसों दुवार।।46।।

राम नाम का अक्षय भण्डार यथाशक्ति लूट लो। जब काल तुम्हारे कंठ को दबोचेगा, तब शरीर के दसों द्वार अवरुद्ध हो जायेंगे। उस समय तुम चेतना-शून्य को जाओगे और राम नाम का स्मरण कैसे कर सकोगे ?

लंबा मारग दूरि घर, विकट पंथ बहु मार।
कहौ संतौ क्यों पाइए, दुर्लभ हरि दीदार।।47।।

पथिक का घर बहुत दूर है और मार्ग केवल लम्बा ही नहीं, दुस्तर भी है। मार्ग में बहुत से बटमार भी मिलते हैं। ऐसी स्थिति में अपने निर्दिष्ट स्थान तक पहुँचना अत्यन्त दुर्लभ है। इसी प्रकार प्रभु की प्राप्ति अपना लक्ष्य है। इसलिए चेत जाओ और गुरु की सहायता से मार्ग से विहनों से बचते हुए अपने लक्ष्य को प्राप्त करो।

गुन गाए, गुन ना कटै, रटै न, राम बियोग।
अह निसि हरि ध्यावै नहीं, क्यों पावै दुर्लभ जोग।।48।।

प्रभु का केवल गुणगान करने से कि वह सर्वव्यापी हैं, सर्वज्ञ हैं, सर्वशक्तिमान् हैं और कीर्तन-भजन करने से प्रकृति का त्रिगुणात्मक बन्धन नहीं कट सकता। यदि भक्त हृदय से उसका स्मरण न करता रहे तो प्रभु से वियोग बना रहता है।

कबीर कठिनाई खरी, सुमिरताँ हरि नाम।
सूली ऊपरि नट विद्या, गिरै त नाहीं ठाम।।49।।

कबीर कहते हैं कि प्रभु के भक्ति-मार्ग में बड़ी कठिनाई है। यह कठिनाई उसी प्रकार की है जेसै सूली के ऊपर नट द्वारा दिखलायी जाने वाली कला, जिसमें हमेशा यह भयावह स्थिति बनी रहती है कि यदि वह गिरा तो उसके बचने का कोई सहारा नहीं है।

कबीर राम ध्याइ लै, जिभ्या सौं करि मंत।
हरि सागर जिनि बीसरै, छीलर देखि अनंत।।50।।

कबीर कहते हैं कि जिह्वा से तो राम का मन्त्र जपते रहो और मन से उनका ध्यान करते रहो। मन्त्र जपना प्राण की क्रिया है, ध्यान मन की क्रिया। अतः प्रभु तो सागर के समान हैं इसलिये छिछले तालाब रूपी देव-देवियों के चक्कर में पड़कर महासागर के समान प्रभु को मत भुला दो।

कबीर राम रिझाइ लै, मुखि अमृत गुण गाइ।
फूटा नग ज्यों जोड़ि मन, संधिहि संधि मिलाइ॥51॥

कबीर कहते हैं कि हे जीव ! तू उस अमर तत्त्व का गुणगान कर, जो अमृत के समान औरों को भी अमर कर देता है। अपने चित्त को प्रभु में उसी प्रकार मिला दे, जैसे जौहरी फूटे हुए नग को संधि से संधि कर अर्थात् आपस में मिलाकर जोड़ देता है।

कबीर चित्त चमंकिया, चहुँ दिस लागी लाइ।
हरि सुमिरन हाथौं घड़ा बेगे लेहु बुझाइ॥52॥

कबीर कहते हैं कि इस संसार में सर्वत्र विषय वासना रूपी आग लगी हुई है। उसके ताप से तेरा चित्त तप्त हो उठा है। परन्तु हे भक्त! तू घबड़ा मत। प्रभु के स्मरण-रूपी पावन जल से भरा हुआ घट तेरे हाथ में है अर्थात् तू प्रभु का स्मरण करने की स्थिति में है। उस घड़े से तू विषय-वासना रूपी आग को शीघ्र ही अधीन कर ले अर्थात् बुझा ले।

:: ग्यान बिरह ::

दीपक पावक आँनिया,तेल भि आना संग।
तीन्यँ मिलि करि जोइया, (तब) उड़ि उड़ि पड़ैं पतंग॥53॥

ज्योंति के लिए तीन तत्त्वों की आवश्यकता होती है-दीपक, आग और तेल। इसी प्रकार जीव में ज्ञान रूपी ज्योंति तभी आ सकती है, जब गुरु जीव रूपी दीपक में ज्ञान रूपी अग्नि और प्रेम अथवा भक्ति रूपी तेल एकत्र कर तीनों को योजित कर दे। ऐसा होने पर फिर तो विषय-वासना रूपी पतिंगे स्वतः आ-आकर जल मरते हैं।

मारा है जे मरैगा, बिन सर थोथी भालि।
पड़ा पुकारै ब्रिछ तरि, आजि मरै कै काल्हि॥54॥

यदि गुरु ने केवल ज्ञान-विहीन बिरह का बाण मारा है, तब भी शिष्य मरेगा अर्थात् अपना या अहंभाव खोयेगा अवश्य। ठीक इसी प्रकार जिसमें केवल रागात्मक बिरह है, वह भी अहंभाव खोएगा, किन्तु बहुत समय के बाद। जिसको ज्ञान संयुक्त बिरह का बाण लगा है, वह शीघ्र ही अहंभाव खो देगा।

झल ऊठी झोली जली, खपरा फूटिम फूटि।
जोगी था सो रमि गया, आसनि रही विभूति।।55।।

ज्ञान रूपी अग्नि प्रज्ज्वलित हुई, उसमें योगी के सारे संचित कर्मों की झोली जल गयी और क्रियमाण कर्म रूपी भिक्षापात्र भी टूट-फुट गया अर्थात् अब उसका भी योगी पर कोई प्रभाव न रहा। उसके भीतर जो तत्त्व साधना कर रहा था, वह ब्रह्म में विलुप्त हो गया। अब आसन पर केवल भस्म रह गया अर्थात् साधक अपने पूर्व रूप में न रह कन अवशेष मात्र प्रतीक रूप में कहने-सुनने को रह गया।

आगि जु लागी नीर महिं, कांदौ जरिया झारि।
उतर दखिन के पंडिता, मुए बिचारि बिचारि।।56।।

पानी में आग लग गयी और उसका कीचड़ सम्पूर्णतया जल गया अर्थात् अवचेतन में जो दूषित संस्कार और वासनाएँ हैं वे भस्म हो गईं। उत्तर-दक्षिण के पंडित (पोथी तक सीमित ज्ञान वाले पंडित) अर्थात् चारों ओर के शास्त्री विचार कर हार गये पर इसका मर्म किसी की समझ में न आया।

दौं लागी सायर जला पंखी बैठे आई।
दाधी देह न पालवै, सद्गुरु गया लगाइ।।57।।

ज्ञान-विरह की अग्नि से मानस-सरोवर जल गया। अब हंस रूपी शुद्ध जीव ऊपर स्थित हो गया अर्थात् वासनाओं और पृथक् वैयक्तिक सत्ता से विमुक्त हो गया। पृथक् वैयक्तिक सत्ता रूपी देह भस्म हो गई। अब वह पुनः नहीं पनप सकती अर्थात् स्वयं का अहंभाव सदा के लिए जाता रहा। अब वह पुनः पल्लवित न हो सकेगा।

गुरु दाधा चेला जला, बिहरा लागी आगि।
तिनका बपुरा ऊबरा, गलि पूरे के लागि।।58।।

गुरु ने बिरह की आग लगाई। उस आग में चेला जल गया अर्थात् उसके भीतर पूर्ण रूप से विरह की आग व्याप्त हो गई। सामान्यतया आग लगने से तिनका जलकर राख हो जाता है। परन्तु विरह की आग ऐसी होती है जिससे बेचारे क्षुद्र चेले रूपी तिनके का उद्धार ही हो जाता है, क्योंकि उस बिरह से तृण का भस्म से और चेले का पूर्ण से आलिंगन हो जाता है।

अहेड़ी दौ लाइया मिरग पुकारे रोइ।
जा बन में क्रीला करी, दाझत है बन सोइ।।59।।

गुरु रूपी शिकारी शिष्य के मनरूपी देहात्मक वन में ज्ञान-विरह की आग लगता है और वह वासनासक्त जीव रूपी मृग चिल्ला-चिल्लाकर रोता है कि जिस विषय-वासना रूपी वन में भोग कर रहे थे, वह अब जल रहा है, नष्ट हुआ जा रहा है। अर्थात् मृग और आसक्ति-मुक्त जीवन में केवल भेद यह है कि मृग को वन का मोह बना रहता है, परन्तु आसक्ति-मुक्त जीव को क्षण भर के लिए धक्का-सा तो लगता है, परन्तु बाद में उसे मधुर शांति का अनुभव होता है।

पांनीं मांहीं परजली, भई अपरबल आगि।
बहती सरिता रहि गई, मच्छ रहे जल त्यागि॥60॥

जब गुरु ने ज्ञान-विरह की अग्नि प्रज्ज्वलित की तो प्रबल ज्वाला उठी और विषयासक्त जीव प्रज्ज्वलित हो गया। इन्द्रियों का कार्य समाप्त हो गया और जीवात्मा रूपी मत्स्य ने विषय-वासनामयी जल को त्याग दिया।

:: परचा (परिचय) ::

कबीर तेज अनंत का, मानो सूरज सेनि।
पति संगि जागी सुन्दरी, कौतुक वीठा तेनि॥61॥

कबीर कहते हैं कि परमात्मा की ज्योति इतनी शक्तिशाली है मानों सूर्य की श्रेणी उदय हुई हो, परन्तु इस ज्योति रूपी ज्ञान का अनुभव सबको नहीं होता। जो व्यक्ति मोह-निद्रा में सोता नहीं रहता, परमात्मा के साथ जागता रहता है, उन्हीं के द्वारा यह रहस्य देखा जाता है।

पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान।
कहिबे कौ सोभा नहीं, देखे ही परमान॥62॥

परब्रह्म के प्रकाश का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। अनुमान, प्रत्यक्ष, उपमान आदि साधन तो मायिक जगत् के हैं। उसका साक्षात्कार इन किसी भी साधनों के क्षेत्र में नहीं है। उसका सौन्दर्य व्याख्यान से परे है। उसका प्रमाण केवल अपरोक्षानुभूति ही है।

हदे छाँड़ि बेहदि गया, हुआ निरन्तर वास।
कवँल जु फूला फूल बिना, को निरखै निज दास॥63॥

कबीर कहते हैं कि मैं ससीम से परे अर्थात् पारकर असीम में पहुँच गया और वहाँ मेरी शाश्वत स्थिति हो गई। वहाँ मैंने अनुभव किया कि बिना किसी फूल के एक कमल खिला हुआ जिसे प्रभु-भक्त के सिवाय भला और कौन देख सकता है ?

अन्तरि कँवल प्रकासिका, ब्रह्म वास तहँ होइ।
मन भँवरा तहँ लुबधिया, जानैगा जन कोइ॥64॥

हृदय के अन्त:मन में कमल अर्थात् ज्योति प्रकाशित हो रहा है। वहाँ ब्रह्म का निवास है। मन रूपी भौंरा उस कमल रूपी ज्योंति पर लुब्ध होकर उसमें विचरण करता रहता है। इस रहस्य को केवल प्रभु का भक्त ही जान सकता है।

सायर नाहीं सीप नहिं, स्वाति बूँद भी नाँहि।
कबीर मोती नीपजै, सुन्नि सिखर गढ़ माँहि॥65॥

कबीर कहते हैं कि वहाँ न तो सागर है न सीप है और न ही स्वाति-बूँद अर्थात् मोती में उत्पन्न होने के जितने संभावित कारण हैं, उनमें से एक भी विद्यमान नहीं है, फिर भी इस शरीर के भीतर सहस्त्रार में मोती उत्पन्न हो रहा है अर्थात् एक अद्‌भुत ज्योति का साक्षात्कार हो रहा है।

घट माँहैं औघट लह्या, औघट माँहैं घाट।
कहि कबीर परचा भया, गुरू दिखाई बाट॥66॥

कबीर कहते हैं कि गुरु ने मार्ग दर्शन किया। परिणामस्वरूप इस शरीर में ही मैंने एक विकट मार्ग का अनुभव किया और उस विकट मार्ग से ही अपने लक्ष्य को प्राप्त किया। वहाँ मुझे सत्य का दर्शन अर्थात् साक्षात्कार हुआ।

सूर समाना चाँद मैं, दुहूँ किया घर एक।
मन का चेता तब भया, कछू पूरबला लेख॥67॥

जब सूर्य नाड़ी चन्द्र नाड़ी में समाहित हो जाती है अर्थात् सुषुम्ना में चलने लगती है, तब मन का स्वेच्छित फल मिल जाता है। यह पूर्व जन्म के अच्छे कर्मों का ही परिणाम है।

हद्द छाड़ि बेहद गया, किया सुन्नि असनान।
मुनि जन महल न पावहीं, तहाँ किया बिसराम॥68॥

कबीर ने सीमित से आगे बढ़कर असीम को प्राप्त कर लिया है। अब वह शून्य के आनन्द-सागर में अवगाहन कर रहे हैं। जो स्थान बड़े-बड़े मुनियों के लिए भी दुर्लभ है, वहाँ पहुँचकर कबीर पूर्ण विश्राम कर रहे हैं।

देखौ करम कबीर का, कछु पूरब जनम का लेख।
जाका महल न मुनि लहैं सो दोसत किया अलेख॥69॥

कबीर कहते हैं कि यह मेरे किसी पूर्व जन्म के पुण्य का फल है कि जिस स्थान को बड़े-बड़े मुनि नहीं प्राप्त कर सकते हैं, वह मुश्किल लक्ष्य, निराकार सत्ता कबीर के लिए प्रिय के समान प्राप्त है।

मन लागा उनमन्न सौ, गगन पहूँचा जाइ।
चाँद बिहूँना चांदिना, अलख निरंजन राइ।।70।।

मेरा मन एक संकल्प-विकल्पात्मक अवस्था के ऊपर राम के मन में मिल गया। वहाँ मैंने एक विचित्र प्रकाश का अनुभव किया, जो कि बिना चन्द्रमा के ही चाँदनी जैसा शीतल और स्निग्ध था। मैंने वहीं उस त्रिगुणातीत, निर्गुण, निराकार सत्ता का दर्शन किया है, जो कि स्थूल इन्द्रियों की पहुँच से परे है।

मन लागा उनमन्न सो, उनमन मनहि विलग।
लौंन विलंगा पानियाँ, पानीं लौंन विलग।।71।।

कबीर कहते हैं कि मेरे संकल्प-विकल्पात्मक मन ने अपना स्वभाव छोड़ दिया और राम के मन में उसी प्रकार से सानिध्य हो गया जैसे नमक और जल मिलकर एक हो जाते हैं।

पानी ही तै हिम भया, हिम ह्वै गया बिलाइ।
जो कुछ था सोई भया, अब कछु कहा न जाइ।।72।।

मानव के भीतर जो साक्षि-चौतन्य है, जो चिन्मात्र है, वह पानी के समान है। वही चिन्मात्र अन्तःकरण से परिसीमित होकर चिदाभास का रूप ग्रहण करता है। यह चिदाभास हिम अर्थात् बर्फ के समान है, क्योंकि जल की अपेक्षा में यह स्थूल है। जैसे बर्फ गलकर फिर पानी की अवस्था में आ जाती है, वैसे ही अन्तःकरण में जो चिदाभास है, वह फिर लीन होने पर चिन्मात्र हो जाता है अर्थात् जीव ब्रह्म के रूप में आ जाता है।

भली भई जु भै पड्या, गई दसा सब भूलि।
पाला गलि पानी भया, ढुलि मिलिया उस कूलि।।72।।

यह बहुत अच्छा हुआ कि मैं अपनी सांसारिक दशा को भूल गया और वास्तविक स्वरूप में परिणत हो गया। यह वैसे ही है जैसे हिम परिणत होकर जल हो जाता है और लुढ़क कर किनारे के जल से विलीन हो जाता है।

चौहटै चिंतामणि चढ़ी, हाड़ी मारत हाथि।
मीराँ मुझसू मिहर करि, इब मिलौं न काहू साथि।।73।।

जीवन-यात्रा में मैं उस चौराहे पर पहुँच गया हूँ जहाँ प्रभु से साक्षात्कार हो गया है। परन्तु अंतःमन में स्थित काम, क्रोध, मोह रूपी डाकू मेरी उस अमूल्य निधि को छीन लेना चाहते हैं। हे दया के सागर मेरे ऊपर दया करो जिससे अब मैं इन सबों के चक्कर में न पड़ूँ।

पंखि उड़ानी गगन कौं, पिण्ड रहा परदेस।
पानी पीया चंचु बिनु, भूलि या यहु देस॥74॥

जीव रूपी पक्षी (हंस) कुण्डलिनी के सहारे सहस्त्रार तक उड़ गया अर्थात् परमतत्त्व का साक्षात्कार कर लिया और यह भौतिक शरीर अपने स्थान पर यों ही पड़ा रहा, जो कि अब उस जीव के लिए परदेश-सा हो गया है। जब जीव को परमतत्त्व का अनुभव नहीं था, तब उसके लिए शरीर स्वदेश और परमतत्त्व परदेश था। अब परमतत्त्व स्वदेश हो गया और शरीर परदेश हो गया। उसने इन्द्रियों के बिना ही आनन्द रस का पान किया और सांसारिक दशा को भूल गया अर्थात् इससे अब उसकी आसक्ति जाती रही।

सुरति समानी निरति मैं, अजपा माँहै जाप।
लेख समाना अलेख मैं, यौं आपा माँहै आप॥75॥

साधना की प्रगति में साधक स्थूल से सूक्ष्म, शब्द से अशब्द, प्रत्यक्ष से अप्रत्यक्ष, साकार से निराकार, ससीम से असीम, अहंकार से निरहंकार की ओर बढ़ता चला जाता है और जब वह अशब्द, निराकार, अप्रत्यक्ष और निरहंकार अवस्था पर पहुँचता है, तब उसे ब्रह्म-तत्त्व का वास्तविक दर्शन होता है।

आया था संसार में, देखन कौ बहुत रूप।
कहै कबीरा संत हो, परि गया नजरि अनूप॥76॥

कबीर कहते हैं कि हे संतो ! मैंने संसार में अनेक रूप देखने के लिए जन्म लिया था, परन्तु इन्हीं रूपों के भीतर अनुपम तत्त्व, जो अरूप हैं, मेरी दृष्टि में पड़ गया अर्थात् मुझे अनुपम तत्त्व का दर्शन हो गया।

धरती गगन पवन नहिं होता, नहिं तोया नहिं तारा।
तब हरि हरि के जन हते, कहै कबीर विचारा॥77॥

कबीर कहते हैं कि सृष्टि के पूर्व पृथ्वी, आकाश, पवन, जल, अग्नि ये पाँचों तत्त्व नहीं थे। उस समय केवल हरि ओर उनके भक्त (जीव), अंशी और अंश ही थे।

जा दिन किरतम नां हता, नहीं हाट नहिं बाट।
हुता कबीरा राम जन, जिन देखा औघट घाट॥78॥

जिस समय यह सृष्टि नहीं थी, संसार रूपी बाजार नहीं था, उस समय केवल रामभक्त आदि गुरु कबीर था, जिसको लक्ष्य तक पहुँचने के कठिन और दुर्गम मार्ग का ज्ञान था।

थिति पाई मन थिर भया, सतगुरु करी सहाइ।
अनिन कथा तनि आचरी, हिरदै त्रिभुवन राइ॥79॥

सद्गुरु की कृपा से मैं तत्त्व में प्रतिष्ठित हो गया और मेरा मन अब स्थिर हो गया है, उसकी चंचलता जाती रही। मेरे भीतर अनन्य चरितार्थ हो गया और हृदय में भगवान त्रिभुवनपति विराजमान हो गए।

हरि संगति सीतल भया मिटी मोह की ताप।
निस बासुरि सुखनिधि लहा, (जब) अंतरिप्रगटा आप॥80॥

अनन्तर में आत्म-दर्शन होने पर प्रभु से तादात्म्य हो गया, मोह की ज्वाला मिट गई और मैं निरन्तर आनन्द-निधि का अनुभव कर रहा हूँ।

तन भीतरि मन मानियाँ, बाहरि कहा न जाइ।
ज्वाला तै फिरि जल भया, बुझी बलंती लाइ॥81॥

दर्शन मात्र होने से मन में पूर्ण निश्चय हो गया, संशय हमेशा के लिए समाप्त हो गया। उस स्थिति का मैं शब्द-व्याखन नहीं कर सकता। मोह की ज्वाला जल में परिणत हो गयी। जलती हुई मोह की आग पूर्ण रूप से बुझ गयी अर्थात् परिचय द्वारा पूर्ण शान्ति आ गयी।

जिनि पाया तिनि सुगहगह्या, रसनाँ लागी स्वादि।
रतन निराला पाइया, जगत ढंढोल्या बादि॥82॥

जिन्होंने परम तत्त्व को प्राप्त किया, उन्होंने पूर्ण रूप से हृदय में प्रतिष्ठित कर लिया है, उसके माधुर्य का उन्होंने पूर्ण रूप से आस्वादन किया। उनको एक अनुपम रत्न मिल गया है। वह अब जगत् में और कुछ ढूँढना व्यर्थ समझते हैं अर्थात् परमार्थ के प्राप्त होने पर अन्य अर्थ की क्या आवश्यकता है ?

कबीर दिल साबित भया, पापा फल समरत्थ।
सायत माँहि ढँढोलता, हीरै पड़ि गया हत्थ॥83॥

कबीर कहते हैं कि मैं भव-सागर में अपने इष्ट को टटोल रहा था। गुरु कृपा से मेरे हाथ हीरा ही आ गया अर्थात् सर्वोत्कृष्ट इष्ट मुझे प्राप्त हो गया। फिर तो मेरा हृदय परिपूर्ण हो गया और मैंने जीवन का सर्व-अर्थकारी परमोत्कृष्ट सम्यक्-लक्ष्य प्राप्त कर लिया।

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाँहि।
प्रेम गली अति साँकरी, या में दो न समाँहि॥84॥

मनुष्य में जब तक अहम विद्यमान रहता है तब तक प्रभु दर्शन दुर्लभ होता है। अहम मिटते ही प्रभु से मिलन हो जाता है। प्रेम की यह विशेषता है कि यद्यपि

यह प्रारम्भ दो में होता है, तथापि जब तक द्वैत बना रहता है, तब तक उसमें परिपूर्णता नहीं आती।

जा कारणि मैं ढूँढ़ता, सनमुख मिलिया आइ।
धन मैली पिव ऊजला, लागि न सक्कौं पाई॥85॥

जिसके दर्शन के लिए मैं परेशान था वह आज मेरे सम्मुख है। परन्तु मैं इस संकोच में पड़ा हूँ कि कितना पाप-पंकिल, क्षुद्र-जीव हूँ और मेरा प्रिय कितना शुभ्र और महान् कि मैं पैर पकड़ने का भी साहस न कर सका।

जा कारणि मैं जाइ था, सोई पाया ठौर।
सोई फिरि आपन भया, जाको कहता और॥86॥

जिसके लिए मैं इधर-उधर भटक रहा था, उसको अपने भीतर ही पा लिया। जिसको मैं अन्य कहता था, अब देखता हूँ कि वही वास्तविक अपना है।

कबीर देखा इक अगम, महिमा कही न जाय।
तेज पुंज पारस धनी, नैननि रहा समाय॥87॥

भाग्योदय हुआ उसका साक्षात्कार हुआ, जो अगम था, जिस तक किसी की पहुँच न थी। उसके गौरव और महात्मय का वर्णन असम्भव है। वह ज्योति-पुंज है और अपने स्पर्श से पापी को भी पुण्यात्मा बनाने वाला पारस जैसा सौभाग्य-दायक है। अब वह मेरे नेत्रों में समा गया है अर्थात् मेरी दृष्टि से विलुप्त नहीं होता।

मानसरोवर सुभर जल, हंसा केलि कराहिं।
मुकताहल मुकता चुगैं, अब उड़ि अनत न जाहिं॥88॥

जीव सुषुम्नामार्ग से पहुँचकर शून्य शिखर पर स्थित अमृत कुड में केलि कर रहा है और आनन्द रूपी मोती स्वच्छन्द रूप से जी भर कर चुग रहा है। इस आनन्द को छोड़कर वह अन्यत्र सांसारिक विषयों की ओर नहीं जा सकता।

गगन गरजि अमृत चुवै, कदली कँवल प्रकास।
तहाँ कबीरा बंदगी, कै कोई निज दास॥89॥

आकाश के गर्जन से वह अनहद नाद जो सहस्त्रार में नित्य हुआ करता है और वहाँ से अमृत के समान शक्ति का क्षरण होता रहता है। मेरुदण्ड की सुषुम्ना नाड़ी में चक्रों का प्रकाश होता रहता है। कबीर कहते हैं कि इस अपूर्व अनुभूति के प्रत्यक्ष होने पर सिर झुक जाता है अथवा कोई और प्रभु का भक्त हो, जिसे यह अनुभूति हो जाय तो उसका सिर झुक जाएगा।

नींव बिहूनां देहुरा, देह बिहूनां देव।
कबीर तहाँ बिलंबिया, करै अलख की सेव॥90॥

शून्य शिखर तक पहुँचने पर जीव को एक ऐसे दिव्य भाव का दर्शन होता है, जिसका सादृश्य स्थूल जगत् में नहीं मिलता। स्थूल जगत् में सुदृढ़ नीव पर बने हुए ईट-पत्थर के देवालय में देव का दर्शन होता है, किन्तु वहाँ पर बिना किसी नींव के देवालय में देव के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त होता है और वह देव भी निराकार होता है। कबीर उसका अनुभव कर उसमें रम गया और अलक्ष्य सत् की सेवा में लग गया।

देवल माँहे देहुरी, तिल जेता बिस्तार।
माँहे पाती माँहि जल, माँ है पूजन हार॥91॥

इसी शरीर रूपी देवालय में प्रवेश करने के लिए देहली विद्यमान है, जिसकी परिधि तिल के समान सूक्ष्म है। इस देवालय में बाहर से जल, पत्र आदि नहीं लाया जाता, भीतर ही पत्र है, जल है और पूजने वाला भी है।

कबीर कँवल प्रकासिया, ऊगा निर्मल सूर।
निसि अँधियारी मिटि गई, बाजे अनहद तूर॥92॥

कबीर कहते हैं कि सहस्त्रार के प्रकाश का भान हो गया, ज्ञान का सूर्य उदय हो गया, अज्ञान की अँधेरी रात समाप्त हो गई और अनाहत नाद की तुरही बजने लगी।

आकासे मुखि औंधा कुआँ, पाताले पनिहारि।
ताका जल कोई हंसा पीवै, बिरला आदि बिचारि॥93॥

गगम-मण्डल में एक सहस्त्रार रूपी अधोमुख कुआँ है, जिसका मुख नीचे की ओर है, पाताल अर्थात् मूलाधार चक्र में पनिहारिन रूपी कुण्डलिनी स्थित है। जब साधना द्वारा वह सुषुम्ना मार्ग से होकर सहस्त्रार में पहुँचती है, तब शुद्ध जीव उसके अमृत-जल को पीने में समर्थ होता है। इस मूलतत्त्व पर किसी बिरले ने ही विचार किया है अर्थात् इसे कोई बिरला ही समझता है।

सिव सक्ति दिसि को जुवै, पछिम दिसा उठै धूरि।
जल में सिंह जु घर करै, मछली चढ़ै खजूरि॥94॥

सिद्धों, नाथ योगियों और कबीर में 'सक्ति' इड़ा का प्रतीक है और 'सिव' पिंगला का। जब मछली रूपी कुण्डलिनी ऊपर सहस्त्रार तक पहुँच जाती है, तब सिंह रूपी जीव मानसरोवर में अवगाहन करने लगता है। अर्थात् कुण्डलिनी का जागरण तभी संभव होता है, जब इड़ा-पिंगला में स्थित प्राण-अपान वायु

तुल्यबल हो जायँ, किन्तु कोई ऐसा विरला ही जीव है, जो इस मार्ग का अनुसंधान कर सकता है।

अमृत बरिसै हीरा निपजै, घंटा पड़ै टकसाल।
कबीर जुलाहा भया पारखी, अनुभौ उतर्या पार॥95॥

कबीर कहते हैं कि जब शुद्ध अनाहत नाद का परिचय हो जाता है, तब संकल्प-विकल्पात्मक मन उसी में लय को प्राप्त हो जाता है। हमने उसका परिचय प्राप्त कर लिया है और अपने अनुभव से भव-सागर के पार उतर गये हैं।

ममता मेरा क्या करै, प्रेम उघारी पौलि।
दरसन भया दयाल का, सूल भई सुख सौलि॥96॥

प्रभु प्रेम ने रहस्य का द्वार खोल दिया। इससे मुझको दयामय प्रभु का दर्शन हो गया। अब ममता मेरा क्या बिगाड़ सकती है? अहं और मम का भाव ही समाप्त हो गया है और भव का कष्ट सुख की चादर बन गया अर्थात् सभी दुःख आनन्द में परिणत हो गए।

:: लाँबि ::

हेरत हेरत हे सखी, रहा कबीर हिराइ।
बूँद समानी समुंद मैं, सो कत हैरी जाइ॥97॥

जैसे बूँद समुद्र को ढूँढते-ढूँढते जब उसमें मिल जाती है, तब उसका पृथक् अस्तित्त्व नहीं रह जाता है। वैसे ही परम को ढूँढते-ढूँढते मेरा अहं उसी में खो गया और उसका पृथक् अस्तित्त्व समाप्त हो गया। अर्थात् यह जीव जो पहले नाम-रूप को लेकर 'अहं' बना हुआ था, अब प्रभु की खोज में चलते-चलते नाम-रूप से पृथक् होकर प्रभु से तादात्म्य प्राप्त कर लिया है।

हेरत हेरत हे सखी, रहा कबीर हिराइ।
समुंद समाना बूँद मैं, सो कत हेर्या जाइ॥98॥

कबीर कहते हैं कि हे भाई सन्तो ! प्रभु को खोजते-खोजते मैं स्वंय खो गया। समुद्र (अंशी) ने बूँद (अंश) को आत्मसात् कर लिया। अब उस बूँद का पृथक् अस्तित्त्व कैसे खोजा जा सकता है ? अर्थात् एक बार प्रभु से आत्मसात् होने के पश्चात उससे विरक्त नहीं हुआ जा सकता।

कबीर की साखी-2

:: चितावणी ::

कबीर नौबति आपनी, दिन दस लेहु बजाइ।
ए पुर पट्टन ए गली, बहुरि न देखहु आइ॥99॥

कबीर कहते हैं कि हे जीवों ! चेत जाओ। जिस वैभव में तुम लिप्त हो, वह कुछ दिनों का परचम है अर्थात् क्षणिक है। तुम्हारी मृत्यु अवश्यंभावी है। फिर इस पुर, नगर और गली को न देख सकोगे।

जिनके नौबति बाजती, मैंगल बँधते बारि।
एकै हरि के नाँव बिन, गए जनम सब हारि॥100॥

जिनके द्वार पर वैभव-सूचक नगाड़े बजते थे और मतवाले हाथी झूमते थे, उनका जीवन भी प्रभु के नाम-स्मरण के अभाव में सर्वथा व्यर्थ ही हो गया।

ढोल दमामा डुगडुगी, सहनाई औ भेरि।
औसर चले बजाइ करि, है कोइ लावै फेरि॥101॥

इस जीवन में वैभव प्रदर्शन हेतु बाजे जैसे ढोल, धौंसा, डुगडुगी, शहनाई और भेरी विशेष अवसरों पर बजाए जाते हैं। परन्तु जीवन इतना क्षण-भंगूर है कि जो अवसर बीत गया, उसे पुनः वापस नहीं लाया जा सकता है।

सातौ सबद जु बाजते, घरि घरि होते राग।
ते मंदिर खाली पड़े, बैठन लागे काग॥102॥

जिन मंदिरों और प्रासादों में सातों स्वर के बाजे बजते थे और विभिन्न प्रकार के राग गाए जाते थे, वे आज खाली पड़े हुए हैं और उन पर कौए बैठते हैं। सांसारिक वैभव की यही क्षणभंगुरता है।

कबीर थोड़ा जीवना, माड़ै बहुत मँडान।
सबही ऊभा मेल्हि गया, राव रंक सुलतान॥103॥

कबीर कहते हैं कि क्षणिक जीवन के लिए मनुष्य बड़े-बड़े आयोजन करता है, किन्तु चाहे वह बहुत बड़ा राजा या सुलतान हो या साधारण, दरिद्र मनुष्य, सभी की बड़े उत्साह से निर्मित योजनाएँ ध्वस्त हो जाती है। अर्थात् राजा-रंक भी जाते हैं और उनकी योनजाएँ भी ध्वस्त हो जाती हैं।

इक दिन ऐसा होइगा, सब सौ परै बिछोह।
राजा राना छत्रपति, सावधान किन होइ॥104॥

कबीर चेतावनी देते हैं कि चाहे कोई राजा, राणा या छत्रपति हो, सबके लिए एक ऐसा दिन आएगा, जब उसे संसार से सब कुछ त्यागकर इस लोक से जाना होगा। इसलिए हे मनुष्यों ! समय रहते ही सावधान क्यों नहीं हो जाते ?

कबीर पट्टन कारिवाँ, पंच चोर दस द्वार।
जम राना गढ़ भेलिसी, सुमिरि लेहु करतार॥105॥

कबीर कहते हैं कि जीव (सौदागर) इस शरीर रूपी नगर को एक सुरक्षित स्थान समझकर सारा सांसारिक व्यवहार अर्थात् व्यापार टिका हुआ है। किन्तु उसे यह ज्ञात नहीं कि इस शरीर रूपी नगर में पाँच चोर (काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह) विद्यामन हैं और इसमें दस द्वार भी हैं। यह वैसा सुरक्षित और अभेद्य दुर्ग नहीं है, जैसा कि अज्ञानी जीवों ने समझ रखा है। इस दुर्ग पर यमराज का आक्रमण भी होगा और वह क्षणभर में इस गढ़ कोध्वस्त कर देगा। इसलिए हे जीवों ! स्रष्टा का स्मरणकर लो।

कबीर कहा गरबियो, इस जोवन की आस।
केसू फूले दिवस दोइ, खंखर भये पलास॥106॥

कबीर कहते हैं कि यौवन पर गर्व करना व्यर्थ है। यह क्षणभंगुर है। पलाश के फूल के समान इसकी बहार थोड़े दिनों के लिए है। जैसे यह फूल थोड़े ही दिनों में मुर्झा कर गिर जाता है, वैसे ही जवानी की प्रफुल्लता भी अल्प दिनों की होती है। कुछ दिनों के पश्चात जैसे पलाश पत्र-पुष्प-विहीन होकर ठूँठमात्र रह जाता है, वैसे ही यह शरीर भी यौवन-विहीन होकर कंकालमात्र रह जाता है।

कबीर कहा गरबियो, देही देखि सुरंग।
बीछड़ियाँ मिलिबो नहीं, ज्यों काँचली भुवंग॥107॥

कबीर कहते हैं कि इस सुन्दर शरीर को देखकर क्यों गर्व करते हो? मृत्यु होने पर यह शरीर जीव को वैसे ही फिर नहीं मिल सकता, जैसे सर्प केंचुल को त्याग देने पर पुनः उसे धारण नहीं कर सकता।

कबीर कहा गरबियो, ऊँचे देखि अवास।
काल्हि परौ भुई लोटना, ऊपरि जमिहै घास॥108॥

कबीरदास कहते हैं कि ऊँचे-ऊँचे महलों को देखकर क्यों गर्व करते हो? शीघ्र ही निधन होने पर जमीन के अन्दर लेटना होगा अर्थात् दफना दिए जाओगे और ऊपर घास जम जाएगी।

कबीर कहा गरबियो, चाँम पलेटे हाड़।
हैबर ऊपरि छत्र सिरि, ते भी देबा गाड़॥109॥

कबीरदास कहते हैं कि चमड़े से लपेटी हुई हड्डियों पर क्यों गर्व करते हो ? जो लोग श्रेष्ठ घोड़ों पर चढ़ते हैं और जिनके सिरों पर छत्र लगते हैं, वे भी एक दिन मिट्टी में दफना दिए जाते हैं।

कबीर कहा गरबियो, काल कर केस।
नाँ जानौं कहँ मारिहै, कै घर कै परदेस॥110॥

कबीरदास कहते हैं कि काल ने अपने हाथों से तुम्हारे केश को पकड़ रखा है। इसलिए तुम व्यर्थ में क्यों गर्व करते हो? घर हो या परदेश, वह तुम्हें कहाँ मार डालेगा यह तू भी नहीं जानते हो।

ऐसा यहु संसार है, जैसा सैंबल फूल।
दिन दस के व्यौहार में, झूठै रंगि न भूल॥111॥

यह संसार सेमर के फूल के समान है, जो ऊपर से देखने में सुन्दर और मोहक प्रतीत होता है, किन्तु उसके भीतर कोई तत्त्व नहीं होता। अल्पकाल के जीवन और उसकी विरंगात्मक भुलावे में नहीं आना चाहिए।

जीवन मरन बिचारि करि, कूरे काँम निवारि।
जिहिं पंथा तोहि चालनां, सोई पंथ सँवारि॥112॥

कबीरदास कहते हैं कि जीवन-मरण का विचार कर अर्थात् यह समझ ले कि जीवन थोड़े दिन का है, अन्ततः मरना है। इसलिए अक्षम्य कर्मों का परित्याग कर और जिस भक्ति मार्ग पर तुझे चलना है, उसे अभी से सुधार ले।

राखनहारे बाहिरा, चिड़ियौं खाया खेत।
आधा परधा ऊबरै, चेति सकै तौ चेति॥113॥

तेरे आध्यात्मिक जीवन-क्षेत्र का रक्षक बाहर ही बाहर है अर्थात् तुझे कोई सद्गुरु नहीं मिला और ऊपर से विषय-वासना रूपी पक्षी तेरे खेत को खाए जा रहे हैं। तू अब भी चेत जा और थोड़ा-बहुत जो बचा सके, उसे बचा ले अर्थात् अब भी आध्यात्मिक जीवन को बाहरी आक्रमणों से सुरक्षित कर ले।

हाड़ जरै ज्यौं लाकड़ी, केस जरैं ज्यों घास।
सब तन जलता देखि करि, भया कबीर उदास॥114॥

मृत्यु के उपरान्त हड्डियाँ लकड़ी के समान जलती हैं और केश घास के समान। सारे शरीर को जलता देखकर कबीर को संसार से विराग हो गया।

कबीर मंदिर ढहि पड़ी, इंटै भई सैवार।
कोई चेजारा चिनि गया, मिला न दूजी बार॥115॥

कबीर कहते हैं कि अद्भुत स्रष्टा ने इस सुन्दर शरीर (मंदिर) को बनाया है, किन्तु एक दिन वह नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है और उसकी हड्डियों पर, जहाँ वह दफनाया जाता है, घास-फूस जम जाती है। उसका निर्माता उसी शरीर (मंदिर) को फिर बनाने के लिए नहीं मिलता।

कबीर देवल ढहि पड़ा, इंटै भई संवार।
करि चिजारा सौं प्रीतिड़ी, ज्यँ ढहै न दूजी बार॥116॥

कबीर कहते हैं कि यह शरीर रूपी देवालय ध्वस्त हो गया और इसकी इंटों पर घास-फूस जम गई अर्थात् शरीर का माँस और हड्डियाँ जो दफनाई गई थीं, उन पर अब घास-फूस दिखलाई देती है। हे जीव! तू इसके निर्माता प्रभु से प्रेम कर, जिससे दूसरी बार इस देवालय के ढहने का अवसर ही न आए।

कबीर मंदिर लाख का, जड़िया हीरै लालि।
दिवस चारि पा पेखनाँ, बिनसि जाइगा काल्हि॥117॥

कबीर कहते हैं कि यह शरीर लाक्षागृह के समान है, जो हीरे-लाल से जड़ा गया है अर्थात् बहुमूल्य बनाया गया है, किन्तु यह चार दिन का दिखावा है और अल्पकाल में ही विनष्ट हो जायगा।

कबीर धूलि सकेलि करि, पुड़ी ज बाँधी एह।
दिवस चारि का पेखनाँ, अंति खेह की खेह॥118॥

कबीर कहते हैं कि यह शरीर ऐसा है जैसे किसी ने धूल एकत्र कर कोई पिंड या पुड़िया बाँधकर रख दिया हो। यह तो अल्पकाल का दिखावा है। जिस मिट्टी से यह बना है, अन्ततः उसी मिट्टी में मिल जाता है।

कबीर जे धंधै तो धूलि, बिन धंधै धूलै नहीं।
ते नर बिनठे मूलि, जिनि धंधै मैं ध्याया नहीं॥119॥

कबीर कहते हैं कि कर्मों से भागने से काम नहीं चलेगा। यदि कर्म को करते रहोगे तो तुम्हारा अन्तःकरण धुल जाएगा। तुम स्वच्छ हो जाओगे। बिना कर्म किये स्वच्छता नहीं आती। कर्म से कोई नष्ट नहीं होता। वही व्यक्ति मूलतः नष्ट हो जाते हैं, जो कर्म में ईश्वर का ध्यान नहीं रखते।

कबीर सुपनै रैनि कै, ऊघड़ि आए नैन।
जीव परा बहु लूट में, जागै लेन न देन॥120॥

कबीर कहते हैं कि जीवन अज्ञान रूपी रात्रि का स्वप्न है। उसमें जीव नाना प्रकार के सुख-दुःख, लाभ-हानि का अनुभव करता है। परन्तु वे सब अनुभव स्वप्न के समान हैं। ज्ञान-चक्षु खुल जाने पर जीव को यह विश्वास हो जाता है कि अज्ञान रूपी निद्रा में पड़े हुए लाभ-हानि का जीवन स्वप्नवत् व्यर्थ है।

कबीर सुपनैं रैनि कै, पारस जीय मैं छेक।
जे सोऊँ तौ दोइ जनाँ, जे जागूँ तौ एक॥121॥

कबीर कहते हैं कि अज्ञान की रात्रि में जब जीव स्वप्न देखता है तो ब्रह्म और जीव में सर्वाथा पृथक प्रतीत होता है। वह जब तक इस अज्ञान-निद्रा में रहता है, तब तक आत्मा और परमात्मा दो अलग-अलग जान पड़ते हैं। जब वह अज्ञान-निद्रा से जगता है, तब उसे दोनों एक ही प्रतीत होते हैं।

कबीर इस संसार में, घने मनुष मतिहीन।
राम नाम जानै नहीं, आये टापा दीन॥122॥

कबीर कहते हैं कि इस संसार में अधिकतर मनुष्य सर्वथा बद्धिमान होते हुए भी वे अपनी आँखों पर अज्ञान की पट्टी बाँधे रहते हैं। इसीलिए वे राम नाम के मर्म को नहीं जानते।

कहा कियो हम आइ करि, कहा कहैंगे जाइ।
इतके भये न उत के, चाले मूल गँवाइ॥123॥

जीव को स्वयं पर पछतावा हो रहा है कि इस संसार में आकर हमने क्या किया, इस विषय में यहाँ से जाने के बाद प्रभु के सामने हम क्या कहेंगे ? हम न तो इस लोक के हुए, न परलोक के। हमने अपना नैसर्गिक सरलता भी गँवा दिया।

आया अनआया भया, जे बहु राता संसार।
पड़ा भुलावा गाफिलाँ, गये कुबुद्धी हारि॥124॥

जीव संसार के विषयों में इतना अनुरक्त हो जाता है कि उसका संसार में आना न आने के बराबर है अर्थात् संसार में जन्म लेकर उसे जो सीखना था, उसे वह न सीख सका। इसलिए उसका जीवन व्यर्थ हो जाता है। भुलावे में पड़कर वह गाफिल हो गया। सांसारिक विषयों के मायाजाल में वह अपनी नैसर्गिक आत्मीय चेतना खो बैठता है और अपनी कुबुद्धि के कारण जीवन की बाजी हार जाता है।

कबीर हरि की भगति बिन, ध्रिग जीवन संसार।
धूँवाँ केरा धौलहर, जातन लागै बार॥125॥

कबीर कहते हैं कि ऐसे जीवन को धिक्कार है, जो मानव जीवन पाकर भी प्रभु की भक्ति नहीं करता। जैसे धुएँ का महल देखने में तो बहुत प्रिय लगता है, किन्तु वह सर्वथा निस्सार होता है, वैसे ही मानव-जीवन चाहे और सब बातों में कितना सुन्दर क्यों न हो, किन्तु प्रभु-भक्ति के बिना सर्वथा सारहीन हैं।

जिहि हरि की चोरी करी, गये राम गुन भूमि।
ते बिधना बागुल रचे, रहे अरध मुखि झूलि॥126॥

जो प्रभु के भजन से जी चुराते हैं और राम के गुणों को भूल जाते हैं, उन्हें ब्रह्मा ने बगुले के रूप में बनाया है, जो कि मछली की खोज में नीचे सिर लटकाये रहते हैं।

माटी मलनि कुँभार की, घनी सहै सिरि लात।
इहि औसरि चेत्या नहीं, चूका अबकी घात॥127॥

जिस प्रकार मिट्टी को आकार ग्रहण में कुम्हार द्वारा रौंदने की क्रिया में अनेक लातें सहनी पड़ती हैं, उसी प्रकार जीव को संसार में रूप ग्रहण करने में काल और कर्मों की अनेक यातनाएँ सहनी पड़ती हैं। मानव-जीवन ही एक ऐसा अवसर है जब वह अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त कर सकता है। यदि वह इस अवसर में नहीं चेतता तो अपना दाँव हमेशा के लिए चूक जाता है और मुक्ति की प्राप्ति कठिन हो जाती है।

इहि औसरि चेत्या नहीं, पसु ज्यों पाली देह।
राम नाम जाना नहीं, अंत परी मुख खेह॥128॥

इस मानव-जीवन रूपी सुन्दर अवसर को पाकर भी यदि तूने परमार्थ के विषय में नहीं सोचा और पशुओं के समान केवल देह को पालने में लगा रहा और राम-नाम के महत्त्व को नहीं पहचाना तो अन्त में तुझे नष्ट होकर मिट्टी में मिल जाना होगा।

राम नाम जाना नहीं, लागी मोटी खोरि।
काया हांडी काठ की, ना ऊँ चढ़ै बहोरि॥129॥

मानव शरीर पाकर यदि राम-नाम के महत्त्व को नहीं समझा तो यह जीवन ही दोषपूर्ण हो जायेगा। यह शरीर काठ की हाँड़ी के समान है, जो कि आग पर सिर्फ एक बार ही चढ़ सकती है। अर्थात् एक बार प्राण निकल जाने पर पुनः जीवन का संचार नहीं हो सकता। साधना के लिए फिर शरीर न मिलेगा, इसलिए हे जीव ! इसी जीवन में शरीर रहते ही साधना में प्रवृत्त हो जा।

राम नाम जाना नहीं, बात बिनंठी मूलि।
हरत इहाँ ही हारिया, परति पड़ी मुखि धूलि॥130॥

हे जीव! तूने राम नाम के यश को नहीं जाना तो फिर प्रारम्भ में ही बात बिगड़ गयी। तू इस संसार में धन, यश, कामिनी, कंचन, कादम्बिनी आदि का हरण करता रहा। परन्तु इस हरण करने में तू अपने को ही खो बैठा। तेरा मानव जीवन ही व्यर्थ हो गया और अन्ततः तेरे मुख में धूल की पर्तें जमा हो गईं अर्थात् तू मिट्टी में मिल गया।

राम नाम जाना नहीं, पाल्यो कटक कुटुम्ब।
धंधा ही में मरि गया, बाहर हुई न बंब॥131॥

हे जीव! तूने राम नाम के महत्त्व को नहीं जाना और अपना सारा जीवन एक सेना के समान बड़े कुटुम्ब के पालने में ही व्यतीत कर दिया। सांसारिक कृत्यों में ही विनष्ट हो गया और तेरा यशोगान, तेरी कीर्ति प्रकाशित न हो सकी।

मानुष जनम दुलभ है, होइ न बारंबार।
पाका फल जो गिरि परा, बहुरि न लागै डार॥132॥

यह मानव जन्म अति दुर्लभ है। मानव शरीर बार-बार नहीं मिलता। एक बार जब फल वृक्ष से गिर पड़ता है, तब वह फल शाखा से पुनः नहीं जुड़ सकता, वैसे ही एक बार मानव शरीर के क्षीण हो जाने पर वह पुनः नहीं प्राप्त हो सकता। इसलिए इस अवसर को न चूक। इस शरीर के रहते हुए प्रभु-साधना में लग जा।

कबीर हरि की भगति करि, तजि बिषिया रस चौज।
बार बार नहिं पाइए, मनिषा जन्म की मौज॥133॥

कबीर कहते हैं कि हे जीव! मानव जन्म का उल्लासपूर्ण शुभ अवसर बार-बार नहीं मिलता। इसलिए इस जन्म को पाकर विषय-रस के चमत्कार और आस्वाद को छोड़कर तू प्रभू की भक्ति करता रह।

कबीर यहु तन जात है, सकै तो ठौर लगाय।
कै सेवा करि साधु की, कै गोविंद गुन गाय॥134॥

कबीर कहते हैं कि यह मानव शरीर नश्वर है। इसलिए हे जीव! इसके रहते हुए तू इसका सदुपयोग कर ले। तू या तो सन्तों की सेवा कर अथवा गोविन्द के गुणगान से अपने जीवन को सार्थक बना।

कबीर यहु तन जात है, सकै तो लेहु बहोरि।
नांगे हाथौं ते गए, जिनके लाख करोरि॥135॥

कबीर कहते हैं कि हे जीव! यह तेरा मानव शरीर व्यर्थ में नष्ट हो रहा है। यह आकर्षक विषयों, सम्पत्ति के संग्रह आदि में विनष्ट हो रहा है। हो सके तो इसको इन क्षणिक सुखों और प्रलोभनों से बचा ले, क्योंकि सम्पत्ति-संग्रह से कोई लाभ न होगा। जिन्होंने लाखों-करोडों कमाया, वे भी इस संसार से खाली हाथ चले गये।

यह तन काचा कुंभ है, चोट चहूँ दिसि खाइ।
एक राम के नाँव बिन, जिद तदि परलै जाइ॥136॥

यह शरीर कच्चे घड़े के समान है। जिस प्रकार कच्चे घड़े को कुम्भकार के अनेक थपेड़े सहन करना पड़ता है, उसी प्रकार मनुष्य को जीवन में अनेक यातनाओं को सहन करना पड़ता है। उसे किसी ओर भी शान्ति के लिए सहारा नहीं मिलता। इसलिए हे जीव! तू राम नाम में अपना ध्यान लगा, क्योंकि तेरे जीवन का कोई ठिकाना नहीं है, वह चाहे जब विनष्ट हो सकता है।

यह तन काचा कुंभ है, लियाँ फिरै था साथि।
ठपका लागा फुटि गया, कछू न आया हाथि॥137॥

यह शरीर, जिसे तू बड़े गर्व के साथ लिये घूम रहा है, कच्चे घड़े के समान है, जो जरा-सा धक्का लगने से फूट जाता है और फिर कुछ भी हाथ नहीं आता। तेरा शरीर भी वैसा ही नश्वर है। इसका कोई ठिकाना नहीं।

काँची कारी जिनि करै, दिन दिन बधै बियाधि।
राम कबीरै रुचि भई, याही ओषदि साधि॥138॥

हे जीव ! तू टालमटोल की प्रवृत्ति का परित्याग कर। तेरी भव-व्याधि दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। कबीर को राम के प्रति अनुराग हो गया है, जिससे यह उसे तंग नहीं कर पाती। हे जीव! तू भी इसी औषधि का अपने बचाव के लिए प्रयोग कर।

कबीर अपने जीव तैं, ए दोइ बातैं धोइ।
लोभ बड़ाई कारनैं, अछता मूल न खोइ॥139॥

कबीर कहते हैं कि हे जीव! अपने मन से तुम दो बातों को निकाल फेंको-एक तो लोग, दूसरे आत्म-प्रशंसा की तृष्णा। इन दोनों दोषों के कारण अपने पास विद्यमान आत्मा रूपी पूँजी को मत खोओ।

खंभा एक गयंद दोइ, क्यों करि बंधसि बारि।
मानि करै तौ पिउ नहीं, पीव तौ मानि निवारि॥140॥

हे जीव! खम्भा रूपी शरीर एक ही है और अहंभाव और प्रेम रूपी हाथी दो हैं। दोनों को तुम एक साथ कैसे बाँध सकेगा? यह कैसे सम्भव है? यदि तू अहंभाव में रहता है तो उसके साथ प्रिय नहीं रह सकते। यदि तू प्रिय अर्थात् प्रभु को रखना चाहता है तो मान को निकालना पड़ेगा।

दीन गँवाया दुनी सौं, दुनी न चाली साथि।
पाइ कुहाड़ा मारिया, गाफिल अपनैं हाथि॥141॥

हे जीव! तुमने सांसारिक मोह में अपना धर्म खो दिया, परन्तु वह संसार जिसके लिए तुमने अपना धर्म खो दिया, तेरे साथ न गयी। तू इतना अचेतन है

कि अपने ही हाथों अपने पैर में तूने कुल्हाड़ी मार लिया है अर्थात् अपने मोह से तूने स्वयं अपना जीवन नष्ट कर लिया है।

यह तन तो सब बन भया, करम जु भए कुहारि।
आप आपकौं काटिहैं, कहैं कबीर बिचारि॥142॥

यह शरीर वन के समान है और कर्म कुल्हारी। कबीर विचार कर कहते हैं कि हे जीव! तू अपने ही कर्म रूपी कुल्हाड़ी से अपने जीवन रूपी वन को काट रहा है अर्थात् नष्ट कर रहा है।

कुल खोये कुल ऊबरै, कुल राखे कुल जाइ।
राम निकुल कुल भेंटि, सब कुल रहा समाइ॥143॥

जो केवल ससीम, कुटुम्ब, वंश आदि के मोह में पड़ा रहता है, वह वास्तविक कुल अर्थात् पूर्ण, ब्रह्म या भूमा को खो देता है। कुटुम्ब आदि ससीम के मोह में पड़े रहने से पूर्ण या सर्वस्व की प्राप्ति नहीं हो पाती है। राम निकुल हैं उसी में तू वंश आदि ससीम का समर्पण कर दे। उसी में ससीम समाया हुआ है अर्थात् वह सब में व्याप्त है।

दुनियाँ के धौखे मुवा, चलै जु कुल की कांनि।
तब कुल किसका लाजसी, जब ले धरहिं मसांनि॥144॥

हे जीव! तू कुल की गौरव-वृद्धि में पड़ा रहता है। इसी कारण संसारिक भुलावे में मारा जाता है। जब तुझे लोग श्मशान में लिटा देंगे, तब किसका कुल लज्जित होगा ? अर्थात् जिस कुल की मर्यादा-वृद्धि में तू पड़ा रहता है, उससे तेरा सम्बन्ध ही छूट जायगा फिर किसके कुल की प्रतिष्ठा का प्रश्न रह जायगा?

दुनियाँ भाँड़ा दुख का, भरी मुहाँमुह भूष।
अदया अल्लह राम की, कुरलै कौनी कूष॥145॥

यत: संसार तृष्णा से लबालब भरे हुए पात्र स्वरूप है। अत: यह दु:ख का भण्डार है। इसमें पूर्ण तृप्ति के लिए प्रयास करना व्यर्थ है। अल्लाह या राम की दया के बिना यह तृष्णा समाप्त नहीं हो सकती। हे जीव! जब सारा संसार एक अतृप्त वासना का भण्डार है तो ऐसे संसार में किस खजाने के लिए चीखता रहता है?

जिहि जेवरी जग बंधिया, तू जिनि बंधै कबीर।
वैसी आटा लोन ज्यौं, सोना सवां सरीर॥146॥

कबीर कहते हैं कि जिस माया की रज्जु से जगत् बँधा हुआ है, तू उसमें मत फँस। यदि तू उसमें फँसता है तो तेरा यह सोने के समान बहुमूल्य शरीर

अर्थात् मानव जीवन का व्यक्तित्त्व वैसे ही हो जायेगा जैसे आटा में नमक मिलाने पर इस प्रकार घुल-मिल जाता है कि उससे पृथक् नहीं किया जा सकता।

कहत सुनत जग जात है, विषय न सूझै काल।
कबीर प्यालै प्रेम के, भरि भरि पिबै रसाल॥147॥

उपदेशों को कहते और सुनते हुए संसार के लोगों का जीवन समाप्त होता जाता है। विषय में पड़े हुए उन्हें काल की सुधि नहीं रहती। किन्तु कबीर जैसे सन्त विषय के प्याले को मुख से नहीं लगाते। वे मधुर, प्रेम से परिपूर्ण प्याले को छक-छककर पीते हैं।

कबीर हद के जीव सौं, हित करि मुखाँ न बोलि।
जे राचे बेहद सौं, तिन सौं अंतर खोलि॥148॥

कबीर कहते हैं कि ससीम में फँसे हुए लोगों की संगत में मत पड़ों। उनसे अधिक प्रेम की वाणी न बोलो, अन्यथा तुम भी उनकी बातों में फँस जाओगे। जो साधक असीम में अनुरक्त हैं, उन्हीं से तुम अपने हृदय की बात कहो। उन्हीं का संगत करो और उन्हीं की बातों पर चलो।

कबीर केवल राम की, तूँ जिनि छाड़ै ओट।
घन अहरन बिच लोह ज्यौं, घनो सहै सिरि चोट॥149॥

कबीर कहते हैं कि हे जीव! तू केवल प्रभु का स्मरण कर, केवल उसी को अपना अवलम्ब बना। वही तुझको सब दुःखों मुक्त कर सकता है, अन्यथा जैसे निहाई पर रखा हुआ लोहा हथौड़े की चोट से पीटा जाता है, वैसे ही तुझे सिर पर सांसारिक दुःखों की चोट सहनी पड़ेगी।

कबीर केवल राम कह, सुद्र गरीबी झालि।
कूर बड़ाई बूड़सी, भारी पड़सी कालि॥150॥

कबीर कहते हैं कि हे जीव! तू अपनी गरीबी को झेलते हुए केवल प्रभु का स्मरण करे। व्यर्थ का बड़प्पन नष्ट हो जायेगा और भविष्य में यह तुझे बहुत मँहगा पड़ेगा। तू उसके बोझ से दब जायेगा।

काया मंजन क्या करै, कपड़ा धोइम धोइ।
ऊजर भए न छूटिए, सुख नींदरी न सोइ॥151॥

कबीर कहते हैं कि हे जीव! तूने स्वच्छता के वास्तविक मर्म को नहीं समझा है। तू शरीर और कपड़ों को धोकर स्वच्छता का व्यर्थ आडम्बर करता है। वास्तविक स्वच्छता मन की है। काया और वस्त्र के स्वच्छ होने से नहीं वरन् केवल मन की स्वच्छता से ही मुक्त होगा। इसलिए बाह्य स्वच्छता को वास्तविक

स्वच्छता समझकर निश्चिन्त मत रह। सर्वदा आन्तरिक परिष्कार का प्रयास करता रह।

ऊजल कपड़ा पहिरि करि, पान सुपारी खाँहि।
एकै हरि का नाँव बिन, बाँधे जमपुरि जाँहि॥152॥

कबीर कहते हैं कि लोग प्राय: श्वेत वस्त्र धारण करते हैं और अपने मुख को सुशोभित करने के लिए पान-सुपारी का सेवन करते हैं। किन्तु प्रभु के भजन के बिना इस बाह्य सजावट से काम नहीं चलेगा। केवल हरि-स्मरण से ही मुक्ति होगी।

तेरा संगी कोइ नहीं, सब स्वारथ बँधी लोइ।
मन परतीति न ऊपजै, जीव बेसास न होइ॥153॥

हे जीव! तेरा कोई परम मित्र नहीं है, सब लोग अपने-अपने स्वार्थ में बँधे हुए हैं। परन्तु तू ऐसा अज्ञानी है कि इस कटू सत्य के प्रति तेरे मन में प्रतीति नहीं होती और न तेरे हृदय में विश्वास जमता है। कोई भी तेरे साथ न जाएगा।

माँइ बिड़ाँणी बाप बिड़, हम भी मंझि बिड़ाँह।
दरिया केरी नाँव ज्यों, सँजोगे मिलि जाँहि॥154॥

जगत् में सारे सम्बन्ध क्षणिक और संयोगजनक हैं। माँ भी पराई है, पिता भी पराया है और हम सब भी पराए लोगों के बीच में हैं। इनमें से कोई अपना निजी व्यक्ति नहीं है। संसार में हम लोग उसी प्रकार संयोगवश मिल जाते हैं जैसे भिन्न-भिन्न स्थानों से आई हुई नौकाएँ समुद्र या नदी में अकस्मात् मिल जाती है।

इत पर घर उत घर, बनिजन आए हाट।
करम किरानाँ बेंचि करि, उठि कर चाले बाट 155॥

यह संसार जीव का नैसर्गिक धाम नहीं है। वास्तविक धाम तो केशवधाम है, जहाँ से हम आए हैं। संसार एक बाजार के समान है, जहाँ पर लोग वाणिज्य के लिए आते हैं और अपना कर्म रूपी सौदा बेंचकर अपने-अपने मार्ग पर चले जाते हैं। इसलिए हे जीव! संसार तेरा वास्तविक धाम नहीं है वरन् प्रभु ही तेरा वास्तविक शाश्वत धाम है।

नाँन्हाँ काती चित्त दे, मँहगे मोलि बिकाइ।
गाहक राजा राम हैं, और न नेड़ा आइ॥156॥

हे जीव! तू मन लगाकर बारीक कताई कर, क्योंकि बारीक सूत मँहगे दामों पर बिकता है अर्थात् तू अच्छे कर्म कर। उसका ही बड़ा मूल्य होगा और उसके

ग्राहक कोई सांसारिक राजा नहीं, स्वयं प्रभु होंगे। कोई दूसरा तेरे निकट नहीं आएगा। इस माल को कोई दूसरा न खरीद सकेगा।

डागल ऊपरि दौरनां, सुख नींदड़ी न सोइ।
पुन्नैं पाए द्यौहड़े, ओछी ठौर न खोइ॥157॥

हे जीव! यह मानव जीवन पुष्पों की शय्या नहीं अपितु ऊबड़-खाबड़ कंटकाकीर्ण मार्ग पर दौड़ने के समान है। लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कठिन साधना करनी पड़ेगी। क्षुद्र सांसारिक सुखों में लिप्त होकर सुख की नींद न सो। अपने शुभ कर्मों और पुण्य के प्रताप से तुझे देवालय के समान यह पवित्र मानव शरीर प्राप्त हुआ है। इसे तुच्छ कार्यों में लगाकर तू नष्ट न कर।

मैं मैं बड़ी बलाइ है, सकै तो निकसो भागि।
कब लग राखौं हे सखी, रुई पलेटी आगि॥158॥

अहं बुद्धि, आपा बहुत बड़ा रोग है। इसलिए तू उससे मुक्त होने का प्रयत्न कर। क्योंकि 'मैं मैं' से लिप्त बुद्धि आग से लिपटी हुई रूई के समान है, जो तेरे सारे जीवन को नष्ट कर देगी।

मैं मैं मेरी जिनि करै, मेरी मूल बिनास।
मेरी पग का पैखड़ा, मेरी गल की पास॥159॥

हे जीव! अहंभाव और ममत्व पैरों की बेड़ी और गले की फाँसी के समान है। अतः अहंभाव और मेरेपन से दूर रह। अन्यथा यह तेरे जीवन के मूल को ही नष्ट कर डालेगा।

कबीर नाव जरजरी, कूड़े खेवनहार।
हलके हलके तिरि गए, बूड़े जिन सिर भार॥160॥

कबीर कहते हैं कि भव-सागर से पार जाने के लिए यह प्राण, मनयुक्त मानव तन एक नाव के समान है। यह ऐसी नाव है, जो कि एक तो जर्जर हो चुकी है अर्थात् इसमें मोह, मद, राग, द्वेष आदि के छिद्र हो गए हैं, दूसरे इसका नाविक वासना और अहंभावयुक्त अज्ञानी मन है, जो कि सर्वथा निकम्मा है। ऐसी नाव से जीवन-यात्र कैसे पूरी हो सकती है। जिन लोगों ने भक्ति और साधना से अपनी वासना और अहंभाव को त्याग कर अपने को हल्का कर लिया है, वे ही इस भव-सागर को पार कर सकते हैं।

:: मधि ::

कबीर मधि अंग जे को रहै, तो तिरत न लागै बार।
दुइ-दुइ अंग सूँ लाग करि, डूबत है संसार॥161॥

कबीर कहते हैं कि जो मध्य मार्ग का अनुसरण करता है, उसे संसार रूपी भवसागर पार करते देर नहीं लगती। जो द्वन्द्व अर्थात् सुख-दुःख, प्रवृत्ति-निवृत्ति आदि में लिप्त रहता है, वही संसार में डूबता है।

कबीर दुविधा दूरि करि, एक अंग हवै लागि।
यहु सीतल वहु तपपि है, दोऊ कहिए आगि।।162।।

कबीर कहते हैं कि संशय को छोड़कर, अतिवादी दृष्टियों को त्यागकर मध्यम वर्ग में लग जाना चाहिए। अत्यधिक शीतलता और अत्यधिक ताप दोनों अग्नि के समान विनाशक होते हैं। इसलिए मध्यम मार्ग ही श्रेष्ठ है।

अनल आकासाँ घर किया, मद्धि निरन्तर बास।
वसुधा व्योम बिरकत रहै, बिना ठौर बिस्वास।।163।।

एक पक्षी अन्तरिक्ष में अपना नीड़ बनाता है और आकाश तथा पृथ्वी भूर्लोक और स्वर्लोक के बीच में ही निरन्तर वास करता है। यद्यपि अन्तरिक्ष में कोई प्रत्यक्ष आश्रय नहीं है, तथापि अपने दृढ़ विश्वास से वह वहाँ स्थित रहता है। ठीक इसी प्रकार साधक को द्वन्द्वों से अलग रहकर 'सहज-समरस' अवस्था में स्थित रहना चाहिए।

बासुरि गमि नारैनि गमि, नाँ सुपिनंतर गंम।
कबीर तहाँ विलंबिया, जहाँ छाँह नहिं धंम।।164।।

कबीर कहते हैं कि मैं उस द्वन्द्वातीत अवस्था में स्थित हूँ जहाँ न दिन की पहुँच है, न रात की, जो स्वप्नों में भी नहीं जाना जा सकता और न जहाँ छाया है, न धूप।

जिहि पैंडै पंडित गए, दुनियाँ परी बहीर।
औघट घाटी गुर कही, तिहिं चढ़ि रहा कबीर।।165।।

जिस मार्ग से शास्त्रज्ञानी पंडित और संसार की भीड़ चलती रहती है, कबीर उस मार्ग पर नहीं चले। परमतत्त्व का मार्ग अत्यन्त दुर्गम है। वह दुर्गम, कठिन और सँकरा मार्ग गुरु ने बतलाया और कबीर ने उसी मार्ग का अनुशरण कर परमतत्त्व तक आरोहण किया।

सुरग नरक मैं रहा, सतगुर के परसादि।
चरन कँवल की मौंज मैं, रहौं अंति अरु आदि।।166।।

सत्गुरु की कृपा से मैं स्वर्ग-नरक दोनों से विरत हूँ। ये दोनों भोग के स्थल हैं। इनमें जन्म-मरण का चक्कर लगा रहता है। मैं तो निरन्तर प्रभु के चरण-कमल के आनन्द में मग्न रहता हूँ।

हिन्दू मूये राँम कहि, मूसलमान खुदाइ।
कहै कबीर सो जीवता, दुइ मैं कदे न जाइ॥167॥

हिन्दू लोग परमतत्त्व के लिए 'राम-राम' रटते हुए और मुसलमान 'खुदा' में सीमित करके विनष्ट हो गये। कबीर कहते हैं कि वास्तव में वही जीवित हैं, जो राम और खुदा में भेद नहीं करता और दोनों में व्याप्त अद्वैत-तत्त्व को ही देखता है। जीवन की सार्थकता इस भेद-बुद्धि से ऊपर उठना है।

दुखिया मूवा दुख कौं, सुखिया सुख कौं झूरि।
सदा अनंदी राँम के, जिनि सुख-दुख मेल्हे दूरि॥168॥

दु:खी व्यक्ति दु:ख के कारण पीड़ित रहता है और सुखी अधिक सुख की खोज में चिन्तित रहता है। कबीर कहते हैं कि राम के भक्त, जिन्होंने दु:ख-सुख के द्वन्द्व का त्याग दिया है, सदा आनन्द में रहते हैं।

कबीर हरदी पीयरी, चूना ऊजल भाइ।
राँम सनेही यूँ मिलै, दोनउं बरन गँवाइ॥169॥

कबीर कहते हैं कि हल्दी पीली होती है और चूना श्वेत रंग का होता है। परन्तु जब दोनों एक में मिलते हैं, तब एक नया लाल रंग बन जाता है। इसी प्रकार जब राम और उनके भक्त मिलते हैं, तब न तो भक्त का अहंभाव रह जाता है और न ब्रह्म का निर्गुणत्व। वह भागवत पुरुष हो जाता है।

काबा फिर कासी भया, राँमहि भया रहीम।
मोट चून मैदा भया, बैठि कबीरा जीम॥170॥

सम्प्रदाय के आग्रहों को छोड़कर मध्यम मार्ग को अपनाने पर काबा काशी हो जाता है और राम रहीम बन जाते हैं। सम्प्रदायों की रूढ़ियाँ समाप्त हो जाती हैं। भेदों का मोटा आटा अभेद का मैदा बन जाता है। हे कबीर! तू इस अभेद रूपी मैदे का भोजन कर, स्थूल भेदों के द्वन्द्व में न पड़।

धरती उरु असमान बिचि, दोइ तूँबड़ा अबध।
षट दरसन संसै पड़ा, अरु चौरासी सिध॥171॥

पृथ्वी और आकाश के बीच में द्वैत-दृष्टि का तुंबा अविनाश्य है। उसका सरलता से विनाश नहीं किया जा सकता। उसी द्वैत के कारण छहों दर्शन और चौरासी सिद्ध संशय में पड़े रहते हैं तथा सत्य का अनुशरण नहीं कर पाते।

:: बेसास ::

जिनि नर हरि जठराहँ, उदिक थैं पिडं प्रकट कीयौं।
सिरे श्रवण कर चरन, जीव जीभ मुख तास दीयौ॥

उरध पाव अरध सीस, बीस पषां इम रखियौ।
अंन पान जहाँ जरै, तहाँ तैं अनल न चखियौ॥
इहि भाँति भयानक उद्र में उद्र न कबहूँ छंछरै।
कृसन कृपाल कबीर कहि, हम प्रतिपाल न क्यों करै॥172॥

जिस प्रभु ने गर्भ में रज-वीर्य से मानव शरीर का निर्माण किया, जिसने उसको कान, हाथ, पैर, जिह्वा, मुख आदि दिया, गर्भ में ऊपर पैर और नीचे सिर की दशा में दस मास तक सुरक्षित रखा। जिस जठराग्नि में भुक्त अन्न, जल आदि जीर्ण हो जाते हैं, वहाँ भी तू उस जठराग्नि से बचा रहा। इस प्रकार माँ के भयानक पेट में भी तेरा उदर कभी खाली नहीं रहा, तेरा पोषण मिलता रहा। जब उदर में इस परिस्थिति में उदार प्रभु तेरा पोषण करता रहा, कबीर कहते हैं तो वह कृपालु प्रभु अब तेरा प्रतिपालन क्यों र करेगा? अर्थात् हे मनुष्य! तू प्रभु की उदारता पर विश्वास रख। वह तेरी रक्षा करेगा।

भूखा भूखा क्या करै, कहा सुनावै लोग।
भाँड़ा गढ़ि जिन मुख दिया, सोई पुरवन लोग॥173॥

कबीर कहते हैं कि हे जीव! तू 'भूखा-भूखा' की रट क्यों लगाता है? अपनी भूख की कहानी लोगों को क्यों सुनाता है ? जिस -पालु प्रभु ने तेरे शरीर रूपी घड़े को गढ़कर मुख दिया है, वही उदर-पूर्ति भी करेगा।

रचनाहार कौं चीन्हि लै, खाबे कौं क्या रोइ।
दिल मन्दिर मैं पैसि करि, तांनि पछेवरा सोइ॥174॥

हे जीव! तू अपने स्रष्टा को पहचान। खाने के लिए क्यों रोता है? अपने हृदय रूपी मन्दिर में प्रविष्ट होकर तू प्रत्यग्राम्य को पहचान और विश्वास रूपी चादर ओढ़कर सुख की नींद सो अर्थात् निश्चिन्त हो जा।

राँम नाँम करि बोंहड़ा, बोहौ बीज अघाइ।
खंड ब्रह्माण्ड सूखा परै, तऊ न निष्फल जाइ॥175॥

रामनाम का बीज धारण करो और जी-भरकर अपने जीवन-क्षेत्र में बोओ। चाहे चारों ओर सूखा पड़ जाय, कहीं भी वर्षा न हो अर्थात् चाहे जैसी विकट परिस्थिति क्यों न हो, यह रामनाम का बीज अवश्य उगेगा। वह कभी निष्फल नहीं जा सकता है। रामनाम से संसिद्धि अवश्य प्राप्त होगी।

चिंतामनि चित मैं बसै, सोई चित मैं आंनि।
बिन चिंता चिंता करै, इहै प्रभु की बांनि॥176॥

तेरे अर्न्तमन में सभी वाछ्ंछित पदार्थों को देनेवाला समर्थ ईश्वरूपी चितामणि विद्यमान है। तू उसी में चित्त को लगा। प्रभु का यही स्वभाव है कि वह सबका ध्यान रखते हैं, कोई उनका चिंतन करे या न करे।

कबीर का तूँ चिंतवै, का तेरे चिंते होइ।
अनचिन्ता हरि जी करै, जो तोहि चिंति न होइ॥177॥

कबीर कहते हैं कि हे मनुष्य! तू व्यर्थ की चिंता क्यों करता है? तेरे चिंता करने से होता भी क्या है? तेरे लिए जो आवश्यक है प्रभु बिना तेरे सोचे पूर्ण कर देते हैं, जिससे तुझे चिंता न करनी पड़े। इसलिए प्रभु में पूर्ण आस्था रख।

करम करीमाँ लिखि रहा अब कुछ लिखा न जाइ।
मासा घटै न लि बढ़ै, जौ कोटिक करै उपाय॥178॥

–पालु प्रभु ने तेरे कर्मों के अनुसार फल का लेखा–जोखा तैयार कर रखा है। अब उसके आगे कुछ भी नहीं लिखा जा सकता। इसमें कुछ भी घट–बढ़ नहीं हो सकती, व्यक्ति चाहे जितना कोशिश क्यों न करे।

जाकौ जेता निरमया, ताकौं तेता होइ।
रत्ती घटै न तिल बढ़ै, जौ सिर कूटै कोई॥179॥

प्रभु ने जीव के लिए जितना भोग रच दिया है उतनी ही उसे मिलता है। इसके अतिरिक्त उसे कुछ भी प्राप्त नहीं होता, कोई चाहे कितना ही सिर क्यों न पिट ले।

चिंता छांड़ि अचिंत रहु, साँई है समरत्थ।
पसु पंखेरू जंतु जिव, तिनकी गाँठी किसा गरत्थ॥180॥

हे जीव ! तू चिंता छोड़कर निश्चिंत रह। प्रभु सामर्थ्यवान है। पशु, पक्षी और अन्य जीव–जन्तुओं को भी उनकी आवश्यकता के अनुसार प्रभु ने सम्पदा एकत्र कर रखी है। जिसने उनके लिए सभी आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति की है, वही तेरे लिए करेगा।

इसंत न बाँधे गाठरी, पेट समाता होइ।
आगैं पाछैं हरि खड़ा, जो माँगै सो देइ॥181॥

संत में संचय की प्रवृत्ति नहीं होती। वह केवल आवश्यकता–भर पदार्थों को ग्रहण करता है अर्थात् उसमें अपरिग्रह की अपवृत्ति नहीं होती है। प्रभु सर्वव्यापी है। भक्त को जिस वस्तु की आवश्यकता होती है वह उसकी पूर्ति कर देता है।

राँम नाँम सौं दिल मिला, जम सों परा दुराइ।
मोहि भरोसा इष्ट का, बंदा नरक न जाइ।।182।।

मेरा हृदय रामनाम से युक्त है। अब यमराज मेरा कुछ नहीं कर सकता। उसके अधिकार से मैं अलग हो गया हूँ। मुझे अपने इष्टदेव का पूरा भरोसा है। उनका भक्त कभी नरक में नहीं जा सकता।

कबीर तूँ काहै डरै, सिर परि हरि का हाथ।
हस्ती चढ़ि नहिं डोलिए, कूकुर भुसैं जु लाख।।183।।

कबीर कहते हैं कि हे जीव! प्रभु का संरक्षण हाथ तेरे ऊपर है, फिर तू क्यों विचलित होता है? जब तू हाथी पर सवार हो गया, तब क्यों भयभीत होता है? अब तो तू सुरक्षित है। तेरे पीछे चाहे लाख कुत्ते भूँकें, तुझे उनका भय नहीं करना चाहिए।

मीठा खाँड़ मधूकरी, भाँति भाँति कौ नाज।
दावा किसही का नहीं, बिना बिलायत राज।।184।।

भिक्षा से प्राप्त भोजन में भाँति-भाँति का अन्न रहता है। वह खाँड़ के समान मीठा होता है। उसमें किसी एक व्यक्ति का अधिकार नहीं रहता। भिक्षान्न से सन्तुष्ट ऐसा साधु बिना राज्य के ही राजा है।

माँनि महातम प्रेम रस, गरवातन गुण नेह।
ए सबही अहला गया, जबहिं कहा कछु देह।।185।।

किसी व्यक्ति से किसी वस्तु की याचना करते ही सम्मान, महातम्य, प्रेमभाव, गौरव, गुण और स्नेह आदि सभी का नाश हो जाता हैं।

माँगन मरन समान है, बिरला बंचौ कोइ।
कहै कबीरा राम सौं, मति रे मँगावै मोहि।।186।।

माँगना मृत्यु के समान दुःखदायी है। ऐसी वृत्ति से शायद ही कोई बच पाता है। प्रत्येक को कुछ-न-कुछ आवश्यकता पड़ती रहती है और उसे माँगना पड़ता है तथापि कबीर राम से प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभु! मैं ऐसी स्थिति में कभी न आऊँ कि मुझे कभी किसी से कुछ माँगना पड़े।

पांडर पिंजर मन भँवर, अरथ अनूपम बास।
राँम नाँम सींचा अँमी, फल लागा विस्वास।।187।।

शरीर कुंद की झाड़ समान है, उसके पुष्प में मनोरथ की अनुपम संगुध है। उस पर मनरूपी भ्रमर मँडराता रहता है। उस झाड़ को साधक रामनाम

जपरूपी अमर प्राणदायियी शक्ति से सींचता रहता है। तब उसमें विश्वास के फल प्रफुल्लित होते हैं। यही भक्ति की सार्थकता है।

मेरि मिटी मुकता भया, पाया ब्रह्म बिसास।
अब मेरे जूजा कोइ नहीं, एक तुम्हारी आस॥188॥

अहं और मेरापन का भाव समाप्त हो गया। अब मैं इस सीमा से विरत् हो गया और मेरी ब्रह्म में पूर्ण आस्था हो गयी। हे प्रभु अब मेरे लिए कोई दूसरा नहीं है, केवल तुम्हारा भरोसा है।

जाके हिरदै हरि बसै, सो नर कलपै काँइ।
एकै लहरि समुंद की, दुख दालिद सब जाइ॥189॥

जिसके हृदय में प्रभु का निवास है, वह और किसके लिए कल्पित है ? भगवान के अनुग्रहरूपी समुद्र की एक लहर मात्र से उसके सभी दुःख और दारिर्द्य नष्ट हो जाते हैं।

पद गावै लौंलीन ह्वै, कटी न संसै पास।
सबै पछाड़े थोथरे, एक दिना बिस्वास॥190॥

यदि संशय का बंधन नहीं कटा तो सर्वथा प्रभु में लीन होकर पद गाने से कुछ भी लाभ नहीं हो सकता। विश्वास-रहित सारी साधना वैसे ही व्यर्थ है जैसे बिना अन्नकण के थोथे तुष (खाली सूप) को पछोरना।

गावन ही मैं रोवना, रोवन ही मैं राग।
इक बैरागी ग्रिह करै, एक ग्रिही बैराग॥191॥

एक दिखावे में गाता है, किन्तु भीतर से रोता है। दूसरा ऊपर से तो रोता हुआ प्रतीत होता है, किन्तु भीतर से गाता है। ठीक इसी प्रकार एक वैरागी होते हुए भी भीतर से आसक्त रहने के कारण गृहस्थी से बँधा है और दूसरा ऊपर से घर-गृहस्थी तो बनाये हुए है, किन्तु भीतर से वह अनासक्त है अर्थात् उसमें सांसारिक विषयों के प्रति वास्तविक वैराग्य है।

गाया तिन पाया नहीं, अनगायाँ तै दूरि।
जिनि गाया विस्वास सौं, तिन राम रहा भरपूरि॥192॥

जिन्होंने बिना विश्वास के प्रभु का गुणगान किया, भक्ति का ढिंढोरा पीटा, वे प्रभु को प्राप्त करने में असमर्थ हैं, जो प्रभु का नाम लेते ही नहीं, उनसे तो वह दूर ही है। जो श्रद्धा और विश्वास के साथ राम-नाम का गुणगान करते हैं, उनके रोम-रोम में प्रभु व्याप्त रहते हैं।

:: सम्रथाई ::

ना कछु किया न करि सका, नाँ करने जोग सरीर।
जो कछु किया सो हरि किया (ताथै) भया कबीर॥193॥

मैंने स्वयं से कुछ भी नहीं किया और न कर सकने की सामर्थ्य है। यह स्थूल शरीर किसी कार्य के योग्य नहीं है। मेरे जीवन में जो कुछ भी संभव हुआ है, वह सब प्रभु ने किया है। उन्हीं के साधना से एक साधारण व्यक्ति श्रेष्ठ कबीर हो गया।

कबीर किया कछु होत नहिं, अनकीया सब होइ।
जौ कीएं ही होत है, तौ करता औरै कोइ॥194॥

कबीर कहते हैं कि मनुष्य ईश्वर के अनुग्रह के बिना कुछ नहीं प्राप्त कर सकता। यदि भगवदनुग्रह प्राप्त हो जाता है तो बिना साधना किये ही सब कुछ प्राप्त हो जाता है। यदि साधना, तपस्या आदि से कुछ होता भी है तो उसका वास्तविक कर्ता कोई और नहीं प्रभु ही है।

जिसहि न कोइ तिसहि तूँ तिस सब कोइ।
दरगह तेरी साँइयाँ, नाँमहरूँम न होइ॥195॥

जसका कोई नहीं है, उसका भी आश्रय तू ही है। जिसे तेरा आश्रय प्राप्त है, उसको सभी के आश्रय स्वतः प्राप्त हो जाते हैं। हे प्रभु ! तेरे दरबार में कोई वांछित नहीं रहता अर्थात् तेरी कृपा सब को प्राप्त होती है।

एक खड़े ही ना लहैं, और खड़े बिललाइ।
साँई मेर, सुलषनां, सूतां देह जगाइ॥196॥

कुछ दरबार ऐसे होते हैं जहाँ कुछ लोग खड़े रहते हुए भी कुछ पाने से वांछित रहते हैं और वहीं खड़े-खड़े बिलखते रहते हैं, परन्तु मेरा प्रभु ऐसा कृपालु है कि वह सोये हुए को भी जगाकर देता है।

सात समुंद की मसि करौं, लेखनि सब बनराइ।
धरनी सब कागद करौं, (तऊ) हरि गुन लिखा न जाइ॥197॥

यदि सातों समुद्रों की स्याही बना डालूँ, सारे बनराजि की लेखनी और सारी पृथ्वी को कागज के रूप में ग्रहण करूँ तो भी प्रभु के गुणों का वर्णन सम्भव नहीं।

अबरन कौं क्या बरनिये, मोपै बरनि न जाइ।
अबरन बरने बाहिरा, करि करि थका उपाइ॥198॥

जो अवर्णनीय है उसका वर्णन कैसे हो सकता है? मेरे लिए उसका वर्णन सम्भव नहीं है। वह वर्णन से परे है। लोग अनेक कोशिश करके थक गए, किन्तु उसका वर्णन करने में असफल ही रहे।

झल बाँवे झल दाँहिनैं, झलहि मांहि व्यौंहार।
आगै पीछै झलमई, राखै सिरजनहार।।199।।

संसार में जीव दाहिने-बाएँ, आगे-पीछे चारों ओर ज्वाला अर्थात् त्रिताप (आधिभौतिक-आध्यात्मिक और आधिदैविक) से घिरा हुआ है और उसका सारा व्यवहार इसी ज्वाला के भीतर ही सम्पन्न होते हैं। ऐसी परिस्थिति में प्रभु ही उसकी रक्षा कर सकते हैं। उसमें स्वयं बचने की सामर्थ्य नहीं है।

साँई मेरा बानियाँ, सहजि करै व्यौपार।
बिन डाँड़ी बिन पालरै, तौले सब संसार।।200।।

मेरा प्रभु अद्‌भुत व्यापारी है। वह सहज रूप में व्यापार करता है अर्थात् संसार के प्रत्येक व्यक्ति को उसके कर्म के अनुसार फल देता है। उसके न्याय का तराजू ऐसा है जिसमें डाँड़ी और पलड़े के बिना व्यक्ति के भाग का निर्धारण उसके कर्म के अनुसार करता है।

कबीर वार्या नाँव पर, कीया राई लौनं।
जिसहि चलावै पंथ तूँ, तिसहि भुलावै कौंन।।201।।

कबीर कहते हैं कि मैंने प्रभु के नाम पर अपने को पूर्णरूपेण समर्पित कर दिया है। जिसे भगवान सन्मार्ग पर लगा देता है, उसे भ्रमित कौन कर सकता है?

कबीर करनी क्या करै, जे राँम न करै सहाइ।
जिहि जिहि डाली पग धरै, सोई नइ नइ जाइ।।202।।

कबीर कहते हैं कि यदि मनुष्य को भगवान की सहायता न मिले तो वह अपने उपाय से क्या कर सकता है? प्रभु की सहायता के बिना साधक जिस डाल का आश्रय लेकर ऊपर चढ़ना चाहता है अर्थात् साधना में जिस मार्ग का अवलम्ब लेकर आगे बढ़ना चाहता है, वही डाल नीचे झुक जाती है और साधक के नीचे गिर जाने की आशंका उत्पन्न हो जाती है।

जदि का माइ जनमियाँ, काहू न पाया सुख।
डाली डाली मैं फिरौं, पातौं पातौं दुःख।।203।।

मुझे जब से माता ने जन्म दिया, मैंने कहीं सुख नहीं पाया। यदि मैं डाल-डाल पर रहता हूँ तो दुःख आगे पात-पात पर रहता है अर्थात् मैं जितना

ही दु:ख से बचने का उपाय करता हूँ, उतना ही दु:ख प्रत्यक्ष दिखाई देती है। केवल प्रभु की शरण में ही सुख है।

साँई सौं सब होत है, बंदे ते कछु नाँहि।
राई ते परबत करै, परबत राई माँहि॥204॥

जीवन में जो भी कार्य हैं वह प्रभु की कृपा से ही पूर्ण होता है, सेवक के प्रयत्न से नहीं हो सकता। प्रभु ऐसी शक्ति है कि वह राई को पर्वत और पर्वत को राई में बदल सकता है अर्थात् क्षुद्र को महान् और महान् को क्षुद्र बना सकता है।

:: कुसबद ::

अनी सुहेली सेल की, पड़तां लेइ उसास।
चोट सहारै सबद की, तास गुरू में दास॥205॥

भाले की नोंक की चोट ता सहा जा सकता है। भाला लगने पर मनुष्य एक बार व्यथा की श्वास तो निकाल भी सकता है, किन्तु दुर्वचन की चोट असह्य होती है। उसे सहन करने की क्षमता जिसमें होती है, कबीर उसे अपना गुरु मानने को तैयार हैं। अर्थात् कटु वचन सहने वाले व्यक्ति संसार में विरले ही मिलते हैं।

खोद खाद धरती सहै, काट कूट बनराइ।
कुटिल बचन साधू सहै, दूजै सहा न जाइ॥206॥

सहन करने की क्षमता केवल महान् लोगों में होती है। विशाल धरती में ही यह क्षमता होती है कि वह खोदाई के कष्ट को झेले, सुविस्तृत वनराजि में ही यह क्षमता है कि वह काट-कूट को सहन कर सके। इसी प्रकार विशाल हृदयमयी प्रभु-भक्त में ही यह क्षमता व्याप्त होती है कि वह लोगों के दुर्वचन वचन सहता है। अन्य लोगों में यह सहन शक्ति नहीं होती।

सीतलता तब जानिए, समता रहै समाइ।
पख छाड़ै निरपख रहै, सबद न दूखा जाइ॥207॥

मनुष्य में वास्तविक शीतलता का गुण तब समझना चाहिए, जब उसमें समत्व का भाव आ जाय, मान-अपमान की भावना से विवर्जित हो जाय और जब वह पक्ष छोड़कर सर्वथा निष्पक्ष हो जाय। तब दुर्वचन उसे दु:खित नहीं कर सकते।

कबीर सीतलता भई, पाया ब्रह्म गियान।
जिहि बैसंदर जग जलै, सो मेरे उदक समान॥208॥

जब मेरे भीतर ब्रह्म-ज्ञान जगा तो समत्वजनित शीतलता व्याप्त हो गयी। जिस दुर्वचनरूपी अग्नि से सारा संसार जल रहा है, वह मेरे लिए जल के समान शीतल हो गया।

:: सबद ::

कबीर सबद सरीर मैं, बिन गुन बाजै तांति।
बाहर भीतर रमि रहा, तातैं छूटि भरांति।।209।।

कबीर कहते हैं कि मेरे भीतर अनाहत नाद बिना तारों के वाद्ययन्त्र की ध्वनि के समान गूँजे रहा है। वह भीतर-बाहर चारों ओर रम रहा है। फलस्वरूप मेरा चित्त शब्द-ब्रह्म में लीन हो गया है और इससे मेरी सारी भ्रान्तियाँ जाती रही हैं।

सती संतोषी सावधान, सबदभेद सुबिचार।
सतगुर के परसाद तैं, सहज शील मत सार।।210।।

जो साधक सत्यनिष्ठ है, सहनशील है और अवधानपूर्वक सभी ध्वनियों के रहस्य पर भली-भाँति विचार करता है, वह सत्गुरु के कृपा से उस सहज अवस्था को प्राप्त करता है, जो सब मतों का सार है।

सतगुर ऐसा चाहिए, जस सिकलीगर होइ।
सबद मसकला फेरि करि, देह दर्पन, करै सोइ।।211।।

सत्गुरु को सिकलीगर अर्थात् सान धराने वाले के समान होना चाहिए, जो शब्द के मसकले द्वारा शिष्य को दर्पण के सदृश निर्मल कर देता है। अर्थात् गुरु ऐसा हो जो सुरति-शब्द-योग की साधना द्वारा शिष्य के सब दूषित संस्कारों को अपसारित कर उसका अन्तःकरण बिल्कुल निर्मल कर दे।

हरि रस जे जन बेधिया, सर गुण सींगणि नाँहि।
लागी चोट सरीर मैं, करक कलेजे माँहि।।212।।

सत्गुरु अपने शब्द को बड़े ही आश्चर्य ढंग से संचालित करता है। वह न तो शर अर्थात् बाण का प्रयोग करता है और गुण अर्थात् प्रत्यंचा तथा सींगणि अर्थात् धनुष का। फिर भी उसके द्वारा प्रवाहित भक्ति-रस से जो बिद्ध होते हैं, उन पर अद्भुत प्रभाव पड़ता है। उस शब्द की चोट तो लगती है शरीर में, किन्तु वह उसका टीस हृदय तक प्रवेश कर जाती है।

ज्यों ज्यों हरि गुन साँभलूँ, त्यों त्यों लागै तीर।
साँठी साँठी झड़ि पड़ी, भलका रहा सरीर।।213।।

मैं ज्यों-ज्यों प्रभु के गुणों का स्मरण करता हूँ, त्यों-त्यों वियोग का वाण मेरे अन्तस्तम में प्रविष्ट होता जाता है और वह बाण ऐसे भयंकर रूप में लगता है कि उसका सरकंडा तो टूटकर अलग हो जाता है, किन्तु उसका फलक भीतर ही बिंधा रह जाता है। इसलिए उसको निकालना असंभव हो जाता है।

ज्यौं ज्यौं हरि गुण साँभलौं, त्यौं त्यौं लागै तीर।
लागे ते भागै नहीं, साहनहार कबीर।।214।।

मैं जितना ही प्रभु के गुण का स्मरण करता हूँ, उतना ही मिलन की उत्कण्ठा तीव्र होती जाती है और विरह की वेदना तीर के समान चोट करती है। किन्तु कबीर उस वेदना से भागने वाला नहीं है। वह धैर्य से उसको सहन करता है।

सारा बहुत पुकारिया, पीर पुकारै और।
लागी चोट जु सबद की, रहा कबीरा ठौर।।215।।

प्राय: सारे लोग जोर-जोर से पुकारते हैं, किन्तु उनकी पुकार बनावटी होती है। वास्तविक वेदना की पुकार कुछ और ही होती है। गुरु के शब्द की चोट लगने पर कबीर जहाँ-का-तहाँ रह गया। उसमें पुकारने की भी शक्ति शेष न रह गई।

5

कबीर की सामाजिक चेतना

सामाजिक से हमारा तात्पर्य किसी देश एवं काल विशेष से संबंधित मानव समाज में अभिव्यक्त परिवर्तनशील जागृति से होता है। इसका उद्‌भव सामाजिक अन्याय, अनीति, दुराचार, शोषण की प्रक्रिया से होता है। इसके पीछे सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक परिस्थितियाँ प्रेरक होती हैं। सामाजिक चेतना व्यक्तिमूलक और समाजमूलक दोनों रूपों में रहती है। साहित्य को सामाजिक परिवर्तन मानते हुए साहित्यकार व्यक्तिमूलक और समाजमूलक दोनों स्तरों पर सामाजिक चेतना का अनुसरण करता है।

कबीर की सामाजिक चेतना के संदर्भ में पहली धारणा ये बनती है कि वे समाज सुधारक थे। वस्तुतः कबीर बाह्याडम्बर, मिथ्याचार एवं कर्मकांड के विरोधी थे, परन्तु सामाजिक मान्यताओं का विरोध करते समय वे सर्व-निषेधात्मक मुद्रा कभी नहीं अपनाते थे। कबीर अपने समय में प्रचलित हठयोग की साधना, वैष्णव मत, इस्लाम तथा अनेक प्रकार की साधना पद्धतियों से परिचित थे। उन्होंने सबकी आलोचना की, किन्तु उनका सारतत्त्व समाहित किया। एक भक्त के रूप में उन्होंने शुष्क ज्ञान साधना से आगे बढ़कर संसार के साथ भावनात्मक संबंध स्थापित किया। उन्हें मानव समाज की विषमाताओं से पीड़ित होने और समाज को उबारने की छटपटाहट भी प्रदान की। कबीर की सामाजिक चेतना उनकी भक्ति भावना का ही एक पक्ष है।

कबीर की सामाजिक चेतना का श्रेय उन युगीन परिस्थितियों को है, जिनके बीच वे पैदा हुए और रहे। वे परिस्थितियाँ जीवन के सभी क्षेत्रों में भयावह अव्यवस्था, विषमता और अंधविश्वास की परिस्थितियाँ थी। पं. हजारी प्रसाद

द्विवेदी के अनुसार कबीर ने ऐसी बहुत सी बातें कही हैं, जिन्हें अगर उपयोग किया जाये तो समाज-सुधार में सहायता मिल सकती है, पर इसीलिए उनको समाज-सुधारक समझना गलती है। वस्तुत: वे व्यक्तिगत साधना के प्रचारक थे। कबीर एक आध्यात्मिक पुरूष थे। उनका सारा जीवन ईश्वर की उपासना में बीता था। भक्ति समझ लाती है, सहानुभूति लाती है और तब आप दूसरे धर्म, दूसरी विचारधारा का हिस्सा बनते हैं। इसके अतिरिक्त स्वयं उनके जैसा नहीं बन जाते वरन् उस धर्म या विचारधारा के प्रति एक समझ पैदा करते हैं। प्रेम, समर्पण, त्याग पर ही यह भक्ति सिद्ध हो सकती है-

कबीर सौदा राम सौं, सिर बिन कदै न होय।

प्रेम भक्ति है-

कबीर निज अधर प्रेम का मारग अगम अगाध।
सीस उतारि पगतलि धरैए तब निकटि प्रेम का संवाद॥

एक और बात जो कबीर की सामाजिक चेतना के संदर्भ में महत्त्वर्पूण है, वह यह कि कबीर के अनुसार सारे धर्म अंतत: एक हैं। उनके बीच विविधता या अलगाव की भावना के स्थान पर कबीर समन्वय स्थापित करने की बात कहतें हैं। समन्वय का अर्थ है कि हम मनुष्य की मूल एकता को स्वीकार करें और उस विशाल मानवतावादी दृष्टि को अपनाएँ, जो समग्र मनुष्य जाति को सामूहिक रूप से अनेक प्रकार की कुसंस्कार और अभावों के बंधन से मुक्त करके उसे जीवन की उच्चतर चरितार्थता की ओर ले जाने का प्रयास करती है। कबीर ने समस्त बाह्याचारों को छोड़कर साधारण मनुष्य की तरह आचरण करने और भगवान को 'निरपख' भगवान के पद पर स्थापित करने की साधना की थी। इसीलिए वे वेद और कुरान से भी आगे बढ़कर कहते है।

गगन गरजै तहाँ सदा पावस झरे, होत
झनकार नित बजत तूरा।
वेद-कत्तेब की गम्म नाहीं-तहाँ रहै
कबीर कोई रमै सूरा॥

यह धर्म निरपेक्षता नहीं धर्म को ठीक से समझना है। बाह्याचारों, व्यर्थ का कुलाभिमानए अकारण ऊँच-नीच की प्रतिक्रियात्मक भावनाओं से समन्वय और समरसता की ओर गतिशील होना ही उचित है। इन्द्रनाथ चौधरी के अनुसार "कबीर ने बाजार में खडे होकर हिंदू धर्म और मुस्लिम मजहब के तादाम्य की कोशिश नहीं की थी बल्कि इन दोनों सम्प्रदायों के बीच की संपूरक स्थिति को

समझाने और उसके प्रसार की बात की थी। राम-रहीम की एकता की बात नहीं, अद्वैत ब्रहम और पैंगबरी खुदा को मिलाने की बात भी नहीं वरन् किस तरह यह दोनों एक दूसरे के पूरक हैं उसका उल्लेख किया और बिना किसी संकोच के दोनों सम्प्रदायों के बीच फैले हुए कट्टरवाद का विरोध करते हुए इन दोनों धर्मों के उन तत्त्वों को उजागर करने का प्रयत्न किया, जिससे एक दूसरे को समझने में आसानी हो और विभिन्नता के बावजूद सौहार्द का प्रसाद हो सके। यह दृष्टिकोण उन्हें विभिन्न-दर्शनग्राही एकेश्वरवादी कबीर बनाता है।"

कबीर के अनुसार यह सारा व्यक्त जगत एक ही तत्त्व से उत्पन्न हुआ है। इसलिए मानव-मानव में किसी प्रकार का भेद देखना अज्ञान का द्योतक है। इसीलिए अपनी रचनाओं में कबीर ने जाति-पाँति, छुआ-छूत, ऊँच-नीच और ब्राह्मण-शूद्र के भेद का विरोध किया है। परन्तु इस विचारधारा के पीछे भी आध्यात्मिक सत्य ही है। कबीर का कहना है-

एकहि जोति सकल कपट व्यापक दूजा तत्त्व न होई।

परमात्मा ने एक ही बूँद से सारी सृष्टि रची है, फिर बाह्मण और शूद्र का भेद क्यों? एक ही नूर से सारा संसार रचा गया है ना कोई भला है न कोई मंद-

"एक बूँद तैं सृष्टि रची है कौन ब्राहमण कौन सूदा"
"एक नूर तैं सब जग कीआ कौन भले को मंदो"

धर्म तथा आचार-व्यवहार से जुड़े बाह्याडम्बरों के प्रति कबीर की कोई आस्था नहीं थी। इन सभी को कबीर ने ढोंग माना और उनकी तीखी आलोचना की। कारण यही था कि ये सभी बाह्याडंबर भेदभाव, ऊँच-नीच की भावना को अभिव्यक्त करते हैं। समाज में अलगाव की भावना उत्पन्न करने वाले इस प्रकार की सभी गतिविधियों की कबीर ने आलोचना की है। उन्होंने सहज सात्विक जीवन के प्रति महत्त्व दिया है। हिन्दु-मुस्लिम दोनों को आड़े हाथ लेते हुए कबीर कहते हैं-

"पाहन पूजे हरि मिलें तो मैं पूजूँ पहार।
तासे या चाकी भली पीस खाये संसार॥"
"कांकर-पाथर जोरि के मस्जिद लई चिनाय।
ता चढ़ मुल्ला बाँग दे क्या बहरा हुआ खुदाय॥

धार्मिक और सामाजिक आधार पर खंड-खंड होते समाज को देखकर ही कबीर ने इस तरह की बात कही थी। वस्तुतः 15वीं शताब्दी में सामाजिक स्थिति अत्यन्त अव्यवस्थित थी, इस विषम स्थिति ने समाज को नैतिक दृष्टि

से जर्जर बना दिया था। इसीलिए अनुभूति समपन्न कवि और सन्त होते हुए भी कबीर सामाजिक उथल-पुथल से तटस्थ नहीं रह पाये।

उस समय सामन्ती चेतना पूरे उभार पर थी धन-संपत्ति, सोना-चाँदी और कामिनी या सुंदरी इन सबके प्रति एक विशेष आकर्षण समाज में था। सामान्य और गरीब जनता अभावग्रस्त थी, परन्तु योग विलास में डूबे शासकों और सुविधा संपन्न वर्गों का इस ओर कोई ध्यान नहीं था। इन परिस्थितियों में समाज दया, ममता, प्रेम जैसे उदारचेता विचारों को छोड़कर विलासिता, लालच, हिंसा की ओर बढ़कर पतनोन्मुख हो रहा था। कबीर ने इन सभी सामाजिक बुराइयों पर तीखा प्रहार किया है। जैसे-

एक कनक अरू कांमिनी, बिरव फल किया उपाइ।
देखें ही तैं बिख चढै, खाए तै मरि जाई।।

इस भाँति कबीर ने समाज को तत्कालीन परिस्थितियों के अनुसार जैसा पायाए अपनी रचनाओं में उसी सत्य को उन्होंने वाणी दी। कबीर की संवेदनशील और पैनी दृष्टि से समाज की कोई गतिविधि छिपी नहीं रह सकती थीं। उन्होंने उस सामाजिक अव्यवस्था का खुलकर विरोध कियां कबीर के सभी भेदभावों का विरोध करते हुए सामाजिक एकता और समता का प्रतिपादन किया।

कबीर की सामाजिक चेतना के आयाम

कबीर का जन्म ऐसे समय में हुआ जब समाज अनेक बुराइयों से ग्रस्त था। छुआछूत, अन्धविश्वास, रूढ़िवादिता, मिथ्याचार, पाखण्ड का बोलबाला था और हिन्दू-मुसलमान आपस में झगड़ते रहते थे। धार्मिक पाखण्ड अपनी चरम सीमा पर था। धार्मिक कट्टरता और संकीर्णता के कारण समाज का सन्तुलन बिगड़ रहा था, कुरीतियों एवं कुप्रथाओं का बोलबाला था तथा सामाजिक विषमता बढ़ती जा रही थी। उस समय किसी ऐसे महात्मा या समाज सुधारक की आवश्यकता थी, जो समाज में व्याप्त इन बुराइयों पर निर्भीकता से प्रहार कर सके, धर्मों के अनुयायियों को बिना किसी भेदभाव के फटकार सके और सदाचार का उपदेश देकर सामाजिक समरसता की स्थापना करे। कबीर इन आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। उल्लेखनीय है कि उनमें हिन्दु और इस्लाम की रुढ़ियों, संकीर्णताओं और कट्टरताओं के विरुद्ध खड़े होने की जैसी दृढ़ता थी, वैसी ही सच को कहने की निर्भीकता भी थी। उन्होंने कहा था-

''साँच ही कहत और साँच ही गहत है,
काँच कू त्याग कर साँच लागा।
कहै कबीर यूँ भक्त निर्भय हुआ।
जन्म और मरन का मर्म भागा।''1

कबीर की सामाजिक चेतना या समाज सुधारक व्यक्तित्त्व पर विचार करने से पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि क्या मध्यकालीन सामाजिक व्यवस्था से जुड़ी हुई समस्याओं को धार्मिक तथा राजनीतिक समस्या से बिल्कुल अलग करके देखा जा सकता है। एक क्षण के लिए मध्यकालीन या कबीर कालीन समाज को दरकिनार करके अपने आधुनिक समाज को देख लिया जाए तो बात कुछ अधिक साफ ढंग से समझ में आ जायेगी। आज के समाज की अनेक समस्याओं में से सबसे बड़ी और प्रमुख समस्या है धार्मिक कट्टरपन। इसी धार्मिक कट्टरता या साम्प्रदायिकता के कारण एक आदमी दूसरे आदमी के खून का प्यासा बन जाता है, जिसके कारण समाज में व्यक्तियों का सह अस्तित्त्व ही खतरे में पड़ जाता है, जो सामाजिक संगठन की मूलभूत आवश्यकता है।

जहाँ तक कबीर के समाज सुधारक होने का प्रश्न है, यह निर्विवाद सत्य है कि वे बुद्ध, गाँधी, अम्बेडकर इत्यादि क्रांतिकारी समाज सुधारकों की परम्परा में शामिल होते हैं। एक महान समाज सुधारक की मूल पहचान यह है कि वह अपने युग की विसंगतियों की पहचान करें, एक मौलिक व समयानुकूल जीवन दृष्टि प्रस्तावित करें और इस जीवन दृष्टि को स्थापित करने के लिए हर प्रकार के भय और लालच से मुक्त होकर दृढ़तापूर्वक संघर्ष करें। कबीर के व्यक्तित्त्व का विश्लेषण करें तो हम समझ सकते हैं कि वे जिस सामंतवादी युग में थे वह सामाजिक दृष्टि से अपकर्ष का काल था। विलासिता जैसे मूल्य समाज में फैले हुए थे। नारी को भोग की वस्तु माना जाता था। वर्णव्यवस्था और साम्प्रदायिकता ने मानव समाज को खंडित किया था। धर्म का आडम्बरकारी रूप वास्तविक धार्मिकता को निगल चुका था और भाषा से लेकर जीवन शैली तक एक प्रकार का आभिजात्य उच्च वर्गों की मानसिकता में बैठा हुआ था। ऐसे समय में कबीर ने मानव मात्र की एकता का सवाल उठाया और स्पष्ट घोषणा की कि ''साई के सब जीव हैं, कीरी कुंजर दोय।'' वे समाज के प्रति अति संवेदनशीलता से भरे रहे क्योंकि 'सुखिया' संसार खाता और सोता रहा जबकि संसार की वास्तविकता समझकर 'दुखिया' कबीर जागते और रोते रहे। यह निम्नलिखित पंक्ति से स्पष्ट हो जाता है–

''सुखिया सब संसार है, खावै अरु सोवै।
दुखिया दास कबीर है, जागै अरु रोवै।'' 2

यह संवेदनशीलता निष्क्रिय नहीं थी, बल्कि इतनी ज्यादा दृढ़ता और आत्मविश्वास से भरी थी कि बेहतर समाज के निर्माण के लिए कबीर अपना घर फूँकने को पूर्णतः तैयार थे–

''हम घर जारा आपना, लिया मुराड़ा हाथ।
अब घर जारौं तासु का, जो चलै हमारे साथ।।'' 3

कबीर के समाज के प्रति यही दृष्टिकोण वर्णव्यवस्था, साम्प्रदायिकता, भाषाई आभिजात्य और धार्मिक आडम्बरों के कठोर खंडन में साफ दिखाई पड़ता है। उल्लेखनीय है कि भारतीय सामाजिक व्यवस्था को धार्मिक व्यवस्था से बहुत अलग करके नहीं देखा जा सकता है। जहाँ जाति–भेद, वर्ण–भेद धार्मिक व्यवस्था का ही परिणाम है, जहाँ पति–पत्नी का सम्बन्ध आध्यात्मिक बन्धन है, जहाँ व्यक्ति, परिवार और समाज के पारस्परिक सम्बन्धों का मूलाधार धर्म हैं, वहाँ सामाजिकता धार्मिकता से अलग कैसे हो सकती है। ब्राह्मण छुआछूत को इसलिए बढ़ावा देता है कि वह इसे अपना धर्म मानता है। यही नहीं एक बल्कि जानवरों का वध इसलिए करता है कि यह उसका धर्म (ईश्वर द्वारा निर्धारित कार्य) है। शूद्रों को सभी वर्गों की सेवा इसलिए करनी चाहिए कि ईश्वर ने उसे इसी के लिए पृथ्वी पर भेजा है। जिस देश में गरीबी–अमीरी, सुख–दुख, जाति–पाति, ऊँच–नीच सभी कुछ ईश्वर की इच्छा से निर्धारित है उस देश में यदि किसी भी तरह का सामाजिक परिवर्तन लाना है तो उसके लिए धार्मिक परिवर्तन की दिशा में ही प्रयत्न करना होगा। आज के बौद्धिक तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण से उपर्युक्त बातें आधारहीन भले ही हों किंतु मध्ययुगीन परिप्रेक्ष्य में ये शत–प्रतिशत सत्य हैं। कबीर जैसा ओजस्वी तथा विद्रोही रचनाकार जब इस तरह का भाव व्यक्त कर सकता है तो भ्रम की गुंजाइश कहाँ रह जाती है–

''पूरब जनम हम बाभन होते ओछे करम तप हीना।
रामदेव की सेवा चूका पकरि जुलाहा कीना।।'' 4

इसलिए यह कहना कि कबीर का व्यक्तित्त्व मुख्यतः भक्त है। समाज सुधार उनके लिए गौण है। समीचीन नहीं है कि कबीर जिस तरह के भक्त हैं वह स्वयं में ही एक नवीन सामाजिक पद्धति एवं मानवीय समता की स्वीकृति तथा पक्षधरता का प्रमाण है। यह भक्ति मार्ग ऐसा है। जहाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र का अलगाव नहीं है, सभी एक हैं और केवल मनुष्य हैं। यदि इनकी कोई

उपाधि है, तो वह भी एक ही है, जो है संत या भक्त। इस साधना में ब्राह्मणों का वर्चस्व नहीं है। ब्राह्मण के महत्त्व को अस्वीकार करना, सभी वर्गों के लिए एक नये आध्यात्मिक मार्ग की खोज करना, वेद, शास्त्रों में प्रतिपादित उन मान्यताओं को अस्वीकार करना, जो ब्राह्मणों के महत्त्व को स्वीकार करती है आदि युग-युग से निर्मित सामाजिक व्यवस्था पर गहरी चोट है-''शास्त्र और सम्प्रदायों का निषेध करके कबीर केवल एक नयी भक्ति पद्धति को ही नहीं जन्म दे रहे थे, बल्कि ढोल पीट-पीटकर जता रहे थे कि मुक्ति का मार्ग ब्राह्मण के घर से होकर नहीं जाता-जैसा कि युगों-युगों से प्रचारित किया जा रहा है। ब्राह्मण, वेद तथा वेद मार्ग के महत्त्व को अस्वीकार करके कबीर ने वस्तुतः सामंती व्यवस्था के मर्म पर आघात किया था। उनके भक्त रूप को महत्त्व देना, प्रकारांतर से उनके सामाजिक विद्रोह को हाशिये में डालना है।'' 5

चूँकि सामाजिक व्यवस्था से जुड़े हुए अनेक मुद्दों के संदर्भ में धर्म की दुहाई दी जाती थी, इसीलिए कबीर, ने उनका विरोध करने के लिए धर्म की ही व्यवस्था में से तर्क ढूंढने का प्रयत्न किया। जाति-पांति, छुआ-छूत और ऊँच-नीच के भेद-भाव को समाप्त करने के लिए उन्होंने आध्यात्मिक तथा दार्शनिक मान्यताओं का आधार ग्रहण किया। भारतीय दर्शन का बहुविख्यात सिद्धान्त अद्वैतवाद तत्त्वतः ब्रह्म की सत्ता को सत्य और शेष को असत्य मानता है। कबीर ने दर्शन के इस सूत्र का सामाजिक समता के लिए उपयोग किया। जब एक ही तत्त्व सर्वत्र सब घट में व्याप्त है तो भेद-भाव कहाँ से पैदा हो जाता है-

''एकहि जोत सकल घट व्यापक, दूजा तत्त्व न होई।
कहै कबीर सुनौ रे संतो, भटकि मरै जनि कोई।।'' 6

कबीर ने परिस्थितियों के अभिशाप से धर्म को बचाने के लिए विश्व-धर्म की रूपरेखा प्रस्तुत की। उन्होंने घोषणा की कि सबका ईश्वर एक ही है। मुसलमान और हिन्दू भले ही विविध नामों से अपने ईश्वर को पुकारे तथापि उनके ईश्वर में किसी भी प्रकार की भिन्नता नहीं है। सत्य एक है, भले ही संप्रदाय अनेक हो। उन्होंने कहा-

''हम तो एक-एक कर जाना।
दोय कहैं तिनको है दो जग, जिन नाहीं पहिचाना।।
एकै पवन एक ही पानी एक ज्योति संसारा।
एक ही खाक घड़े सब भांडे, एक ही सिरजन हारा।।'' 7

कबीरदास ने यह भी अनुभव किया था कि जाति व्यवस्था को अगर शिथिल न किया जाएगा, तो धर्म की रक्षा संभव न हो सकेगी। इसलिए जाति बंधन की परंपरा तोड़ने के लिए उन्होंने अभूतपूर्व प्रयत्न किया।

''जाति-पाति पूछै नहिं कोई, हरि को भजै सो हरि का कोई'' 8

के सिद्धान्त की प्रतिष्ठा कर उन्होंने धर्म को सशक्त और सुसंगठित किया। जाति भेद की संकीर्णता जिस हद तक पहुँच गयी थी, उसका स्पष्ट संकेत कबीर की रचनाओं में मिलता है।

''तुम कत् बाम्हन हमकत सूद।
हम कत् लोहू तुम कत् दूध॥
कह कबीर जे ब्रह्म विचारे।
सो ब्राह्मा कहियतु है हमारे॥'' 9

इसी प्रकार कबीर ने हिन्दू-मुसलमानों दोनों के पाखण्डों का खण्डन किया तथा उन्हें सच्चे मानव-धर्म को अपनाने के लिए प्रेरित किया। कबीर ने दोनों को कसकर फटकारा जो इस प्रकार है-

''अरे इन दोऊन राह न पाई।
हिन्दू अपनी करे बड़ाई, गागर छुअन न देई।
वेश्या के पायन तर सोयै, यह देखो हिन्दुआई।
मुसलमान के पीर-औलिया, मुर्गी-मुर्गा खाई।
खाला के घर बेटी ब्याहै, घर ही में करैं सगाई।'' 10

कबीर मूर्तिपूजा के घोर विरोधी थे। वे मानते थे जिस परमात्मा का कोई आकार नहीं, देशकाल का जिसके लिए कोई आधार नहीं, उसकी मूर्ति कैसी? अतः मूर्तिपूजक हिन्दुओं को फटकारते हुए वे कहते हैं-

''पाहन पूजे हरि मिलै तो मैं पूजूँ पहार।
ताते यह चक्की भली पीस खाय संसार॥'' 11

कबीर की तर्कवादी सोच का एक पहलू उनके आडंबर विरोधी नजरिये में दिखता है। वे मध्यकाल के संत थे, इसलिए ईश्वर में उनकी गहरी आस्था थी। किंतु अपनी सहज तार्किकता से वे समझते थे कि ईश्वर, जो अपने आप में पूर्ण है, किसी भी प्राणी से यह अपेक्षा नहीं रहता होगा कि वह उसके नाम पर बलि चढ़ाए, तीर्थाटन या कर्मकांड करें। अपनी इसी तार्किकता के चलते उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों में प्रचलित आडम्बरों पर करारा प्रहार किया। उन्होंने देखा कि हिन्दुओं में मुंडन कराने की प्रथा प्रचंड रूप में विद्यमान है।

विशेष रूप से मंदिरों और मठों में ईश्वर के साधक इस लालच में गंजे हो जाते थे कि इस परंपरा पर चलकर स्वर्ग तथा ईश्वर की उपलब्धि कुछ आसान हो जाएगी। कबीरदास ने इस अतार्किक परंपरा पर जबरदस्त व्यंग्य करते हुए कहा –

''मूंड मुड़ाए हरि मिले, सब कोइ लेय मुड़ाय।
बार बार के मूंडते, भेड़ न बैकुण्ठ जाय।।'' 12

कबीर ने मुसलमानों को भी आडंबरों के लिए क्रोध के साथ फटकारा है। जब उन्होंने मस्जिद के उपर चढ़कर मौलवी को अजान करते देखा तो व्यंग्य करते हुए पूछा कि क्या तुम्हारा खुदा बहरा है, जो नीचे से तुम्हारी आवाज नहीं सुन पाता। मौलवी पर व्यंग्य करते हुए कबीर ने निम्नलिखित प्रसिद्ध कथन कहा–

''काँकर पाथर जोरि कै, मस्जिद लेई बनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बांग दे, क्या बहरा हुआ खुदाय।।'' 13

आज भी हमारे समाज में धार्मिक आडंबर और अंधविश्वास हर जगह मौजूद है। इन आडंबरों के रहते हम वैज्ञानिक स्वभाव से युक्त समाज का निर्माण नहीं कर सकते। कबीर का महत्त्व यह है कि वे हमें आडंबरों और अंधविश्वासों पर तार्किक सवाल खड़े करना सिखाते हैं। ऐसा वैज्ञानिक स्वभाव अगर सभी का हो जाए तो निश्चित तौर पर तमाम रूढ़ियां और अतार्किक प्रथाएँ समाप्त हो सकती है।

कबीर हमें कुछ अन्य मामलों में भी नैतिक सलाह देते हैं और उनकी अधिकांश नैतिक सलाह आज भी हमारे काम की हैं। उदाहरण के लिए, एक दोहे में उन्होंने संदेश दिया है, जो आज के उपभोक्तावादी समाज के लिए बेहद उपयोगी है–

''साई उतना दीजिए, जामे कुटुम समाय।
मैं भी भूखा न रहूँ, साधु न भूखा जाए।'' 14

कबीर ने अहिंसा की बात भी अत्यंत गहराई के साथ रखी है। उन्होंने महावीर और बुद्ध की परंपरा के अलावा वैष्णव परंपरा से भी अहिंसा का सिद्धान्त सीखा और निजी जीवन में इसका उपयोग भी किया। उनका कथन है कि ''साई के सब जीव हैं, कीरी कुंजर दोय।'' एक दूसरे कथन में तो उन्होंने माँसाहार करने वालों को जमकर फटकार लगाई है और चेतावनी दी है कि उनके द्वारा की गई पशु–हत्याओं का हिसाब ईश्वर अवश्य करेगा। वे मजेदार सा तर्क

देते हुए कहते हैं कि बकरी तो सिर्फ पत्ते खाती है और इतने से ही उसकी खाल उतार ली जाती है। सोचकर देखिए जो इंसान बकरी खाते हैं, उनका क्या हाल होने वाला है–

''बकरी पाती खात है, ताकी काढ़ी खाल।
जे नर बकरी खात हैं, तिनका कौन हवाल॥'' 15

कबीर की सलाह है कि व्यक्ति को दूसरों से बातचीत के लिए विनम्र भाषा का इस्तेमाल करना चाहिए। वे इस बात को समझते थे कि अधिकांश झगड़े भाषा की असावधानियों के कारण ही जन्म लेते हैं, न कि वैचारिक या मानसिक वैपरीत्य के कारण। इसलिए उन्होंने स्पष्ट सलाह दी कि –

''ऐसी बानी बोलिए, मन का आपा खोय।
और को सीतल करे, आपहु सीतल होय।'' 16

कबीर हमें आत्म-आलोचना करना भी सिखाते हैं आमतौर पर हमारी आदत होती है कि हम दूसरों की कमियाँ और अपनी अच्छाइयाँ तुरंत देख लेते हैं। कहा भी जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने मामले में सबसे अच्छा वकील होता है और दूसरों के मामले में सबसे बुरा जज। कबीर हमें इस निम्न मानसिकता से मुक्त कराना चाहते हैं। वे सिखाते हैं कि दूसरों पर कठोर कसौटियों का प्रयोग करने की बजाय खुद पर उनका इस्तेमाल करना चाहिए और अपनी कमियों को ईमानदारी से स्वीकार करने का हौंसला रखना चाहिए। एक कथन में वे बड़ी ईमानदारी से स्वीकार करते हैं कि –

''बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलया कोय।
जो दिल खोजो आपना, मुझसे बुरा न कोय।'' 17

किसी भी व्यक्ति के विचार इतने पूर्ण नहीं होते कि उन पर सवाल न उठाए जा सकें। कबीर भी पूर्ण नहीं है। उनके विचारों में कुछ ऐसे पक्ष मौजूद हैं, जिन्हें पढ़कर चिंता होती है। उनके समय में तो उन कमियों पर ज्यादा चर्चा नहीं हुई पर आधुनिक काल में, जब हर विचारक कई विचारधाराओं की कसौटियों से परखा जाने लगा है, कबीर की कमजोरी भी खुलकर सामने आने लगी है।

कबीर की चेतना पर सबसे गंभीर प्रश्नचिन्ह नारीवादी विचारकों द्वारा लगाया गया है। कबीर के कई ऐसे पद हैं, जिनमें वे नारी की अनावश्यक निंदा करते हुए नजर आते हैं। दरअसल, वे मध्यकाल की जिस परंपरा में दीक्षित थे, उसमें महिलाओं को 'माया' समझा जाता था और उन पर आरोप था कि वे पुरुषों

का ध्यान भटकाने में लगी रहती हैं। समझ नहीं आता कि कबीर जैसा महातार्किक आदमी ऐसे बेवकूफाना विचारों से कैसे प्रभावित हो गया? आज यह सोचकर आश्चर्य होता है कि कबीरदास ने महिलाओं को कितना-बुरा भला कहा है उदाहरण के लिए, वे एक दोहे में कहते हैं कि-

''नारी की झाई पड़त, अंधा होत भुजंग।
कबिरा तिनकी कौन गति, जे नित नारी के संग।।'' 18

कबीर की दूसरी सीमा यह है कि वे सबको विनम्र भाषा का प्रयोग करने की सलाह देते हैं, किंतु खुद इतनी आक्रामक भाषा का प्रयोग करते हैं कि सुनने वाला तिलमिला जाए। यह अंतर्विरोध हर जगह तो नहीं दिखता, किन्तु कबीर के कुछ कथनों में जरूर झलकता है-विशेषतः वहाँ, जहाँ वे किसी मुल्ले या पंडे पर आडम्बरों या जातिवादी व्यवहार के कारण प्रहार कर रहे होते हैं। कुछ लोग का मानना है कि इस गुस्से और आक्रामकता के कारण ही कबीर 'कबीर' बन सके।

कबीर की तीसरी सीमा यह है कि वे इस जगत को झूठा घोषित करते हैं। दरअसल, वे शंकराचार्य से प्रभावित थे, जिन्होंने सम्पूर्ण जगत को मिथ्या कहा था। कबीरदास भी कई स्थानों पर इसलोक को झूठा साबित करते हैं। उदाहरण के लिए, उनका एक कथन है-

''यह संसार कागद की पुड़िया, बूंद पड़े धुलि जाना है।'' 19

कबीर के समय तो यह दृष्टिकोण चल जाता था पर आज नहीं चल पाता। वर्तमान विश्व के अधिकांश लोग सैद्धांतिक तौर पर चाहे मानें या नहीं, पर व्यवहारिक तौर पर समझ चुके हैं कि यह दुनिया ही वास्तविक और अंतिम दुनिया है, इसलिए इसे झूठा मानना और किसी काल्पनिक दुनिया के सपने देखना निरर्थक है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कबीर महान समाज सुधारक थे। जहाँ तक उनके नारी संबंधी या परलोक संबंधी विचार हैं, हमें उनसे प्रभावित नहीं होना चाहिए, क्योंकि वे सत्य धर्म के प्रतिपादक, समन्वयवादी एवं क्रांतिकारी व्यक्ति थे। वे समाज में प्रचलित सभी प्रकार की असमानता बाह्याडम्बर एवं सामाजिक कुरीतियों को दूर करके जनसाधारण को सरल-जीवन, सत्याचरण, पारस्परिक एकता, समता आदि की ओर उन्मुख करने का जो सराहनीय कार्य किया है, उसी के परिणामस्वरूप वे एक उच्चकोटि के 'समाज-सुधारक' कहलाते हैं।

कबीर की समाज संबंधी विचारधारा

भारत के इतिहास का मध्यकाल सामाजिक संक्रांति का युग था। समाज संगठन की दृष्टि से अस्त-व्यस्त था। धर्म दर्शन और संस्कृत की अनेक धाराएँ परस्पर संघर्षरत थीं। हिन्दू-समाज भेदभाव पर आधारित शास्त्रों द्वारा अनुमोदित वर्ण व्यवस्था से संचालित होता था परन्तु विद्रोह के स्वर भी उठते थे। बौद्धों, जैनों, नाथों और सिद्धों इत्यादि की विद्रोह में महती भूमिका होती थी। हिन्दू समाज के समानान्तर मुस्लिम समाज का धर्म इस्लाम जो कि सैद्धान्तिक आधार पर समानता का पोषक होते हुए विषमता की भावना से ग्रस्त हो रहा था। बाह्याचारों ने एक सीमा तक इसे अपने मूल से भटका दिया था। यद्यपि इनके बीच भी सूफी संत विद्रोही तेवर के साथ आ खड़े हुए थे, परन्तु आम जनता कर्मकाण्डों द्वारा संचालित धर्म के दुष्चक्र में उलझी हुई थी। ऐसे समय में कबीर ने जटिल परिस्थितियों के मध्य अपनी स्वतंत्र दृष्टि मानवतावादी चिन्तन पद्धति और दृढ़ संकल्पना शक्ति के द्वारा समाज में व्याप्त विषमता का न केवल विरोध ही किया, अपितु अपनी वाणियों के माध्यम से समतामूलक समाज के लिए आधारभूमि भी प्रस्तुत की। सामाजिक विश्रृंखलता का केन्द्र व्यक्ति के लिए उच्च आदर्श उपस्थित करते हुए कबीर कहते हैं कि व्यक्ति को गुण ग्राही और आत्मज्ञानी होना चाहिए।

यथा–तरूवर तास बिलविये, बारह मास फलंत।/सीतल छाया गहर फल, पंछी केलि करंत कबीर के अनुसार वास्तव में व्यक्ति वही है, जो सामाजिक साम्य, स्थापना हेतु अपना सर्वस्व उत्सर्ग कर दे। द्रष्टव्य है–तन मन सीस समरपन कीन्हां, प्रगत जोति तंह आतम लीनां। इसके अतिरिक्त कबीर ने व्यक्ति के आदर्श के रूप में निस्पृहता अहंकारहीनता एवं निर्विषयता इत्यादि के महात्म्य का उल्लेख किया है। देखिए–निरवेरी निह: कांमता, सांई सेती नेह। विषिया सू न्यारा रहे, संतनि का अंग एह सिद्धान्तत: नारी को व्यक्ति से इतर नहीं माना जाना चाहिए, परन्तु व्यवहार में नारी का विषय पृथक् रूप से ही विचारणीय होता है। उल्लेखनीय है कि कबीर की नारी निन्दा सर्वविदित है, परन्तु उसी के साथ सीमित संदर्भों में समाज में उनकी आदर्श नारी संबंधी विचारधारा के भी दर्शन होते हैं। वह नारी के लिए त्याग, निष्ठा, पतिव्रत एवं सतीत्व की आवश्यकता पर बल देते हुए कहते हैं कि उसे अपने पति के लिए जो कि उसके प्रेम का आधार होता है सब कुछ अर्पित कर देना चाहिए। कि कबीर जैसा विद्रोही कवि

नारी समाज के प्रति समाज के अन्य अंगों जैसे स्वस्थ मानसिकता नहीं रखता है, परन्तु उपर्युक्त संदर्भ के माध्यम से भारतीय समाज के पारिवारिक संबंधों में पति–पत्नी के संबंधों की पवित्रता का स्वरूप अवश्य सामने आ जाता है।

विद्या ग्रहण करने वाला विद्यार्थी कहलाता है। समाज में विद्यार्थी की भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होती है। विद्यार्थी समाज का वह आवश्यक अंग हैं, जो भविष्य के समाज की रूपरेखा का नियन्ता होता है। यद्यपि वर्तमान में विद्या और विद्यार्थी दोनों से संबंधित मान्यताएँ बदल चुकी हैं, परन्तु मध्यकाल तक शिक्षा के मूल उद्देश्यों में से एक एवं मुख्य उद्देश्य अध्यात्म और मानवानुकूल श्रेष्ठ गुणों का विकास था। गुरु एवं शिष्य संबंध सभी मानवीय संबंधों से उच्च एवं पवित्र माने गये। कबीर तो इस संबंध की श्रेष्ठता के प्रबल समर्थक के रूप में सामने आते हैं। यथा–सतगुरु की महिमा अनन्त, अनन्त किया उपकार। लोचन अनन्त उघाड़िया, अनन्त दिखावणहार। विद्यार्थी को सातात्त्विक गुरु प्राप्त करने के लिए अपना सम्पूर्ण अर्पित कर देने की बात करते हुए कबीर कहते हैं कि–मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सो तेरा। तेरा तुझको सौंपता, क्या लागे है मेरा कबीर ने गुरु शिष्य दोनों के लिए श्रेष्ठता स्वनियंत्रण समदर्शिता एवं आत्म नियंत्रण को आवश्यक मानते हुए समाज के सर्व कल्याण के लिए सहायक माना है।यद्यपि साम्प्रदायिकता का जो भयावह स्वरूप समसामयिक संदर्भों में दृष्टिगत होता है वह आधुनिक युग का रूप है।

मध्यकाल में साम्प्रदायिक वैमनस्व कारण साम्प्रदायिक श्रेष्ठता की होड़ की मानसिकता पर आधारित थी। वह कभी तो दो धर्मों के मध्य की होड़ के कारण दृष्टिगत होती थी तो कभी एक ही धर्म के विविध सम्प्रदायों के मध्य दिखाई देती थी। कबीर समाज में साम्प्रदायिक एकता स्थापित करने के क्रम में उभय धर्मों की आलोचना में मुखर हो उठते हैं। यथा–जौर खुदाय मसीति बसत है, और मुलिक किस केरा। तीरथ मूरति राम निवासा, दुहु मैं किनहू न हेरा साम्प्रदायिक साम्य की भावना से संचालित कबीर साहित्य में अनेक दोहे और पद देखे जा सकते हैं। जो समाज में एकता एवं भाईचारे के लिए मार्ग प्रशस्त करने में सहायक सिद्ध होते प्रतीत होते हैं। इसी भावना के समानातर वर्ण व्यवस्था के परिणाम स्वरूप समाज में उपजी अस्पृश्यता का विरोध कबीर द्वारा प्रस्तुत साम्यवादी समाज के संदर्भों की महती विशेषता है। समाज के विकास की प्रमुख बाँधाओं में आर्थिक वैषम्य के प्रभाव को अनदेखा नहीं किया जा सकता है। कबीर आर्थिक विषमता के मूल धन संचय एवं वैभवपूर्ण जीवन पर

कुठाराघात करते हुए कहते हैं–कबीर सो धन संचिये, जो आगे कूं होइ। सीस चढ़ाये पोठली, ले जात न देख्या कोइ वास्तविक धन का संकेत करते हुए कबीर कहते हैं कि–निरधन सरधन दोनों भाई प्रभु की कला न मेरी जाई। कहि कबीर निरधन है सांइ जाके हिदये नाम न होई कबीर की मान्यता है कि धन संचय अध्यात्म और समाज दोनों के विरूद्ध है। यही कारण है कि वह आर्थिक वैषम्य के स्थान पर साम्य स्थापित करने के आकांक्षी रूप में सामने आते हैं।

कबीर अपनी वाणियों के माध्यम से सामाजिक ढाँचे को विशृंखलता से दूर करने के लिए मानवता की भावना की आवश्यकता पर विशेष बल देते हैं। मानवोचित गुणों का उल्लेख करते समय दया, क्षमा, उदारता और दानशीलता आदि को रेखांकित किया जाता है। कदाचित्ध मनुष्यों के यही वह सदव्यवहार है, जो समाज को सुसंगठित रखने में अहम् भूमिका निभा सकते हैं। सद्व्यवहार से संबंधित कबीर काव्य में अनेक पद एवं दोहे बिखरे पड़े हैं। यथा–एते औरत मरदां साजे, ये सब रूप हमारे। कबीर पंगुरा राम अलह का, सब गुरु पीर हमारे प्रस्तुत दोहे में कबीर सभी में यहाँ तक कि असहाय तक में अपनी आत्मा को पहचानते हुए उनका सम्मान एवं सेवा करने की घोषणा करते हैं। प्राचीन काल से ही संसार के अधिकांश समाज में व्यवस्था के लिए जिस विशिष्ट नियमों और उपनियमों का पालन किया जाता है, ऐसे सार्वजनीन एवं सार्वभौमिक नियम को धर्म की संज्ञा से अभिहीत किया जाता है। व्यवस्था, न्याय, सत्य, अहिंसा और प्रेम इत्यादि उदात्त भावों पर आधारित होती है। यही समाज को संगति प्रदान करती है। परन्तु जब अव्यवस्था या यूँ कहा जाये कि धर्म के स्थान अधर्म का जब समाज में प्रभाव बढ़ जाता है तब समाज में विसंगतियों का जन्म स्वाभाविक है। कबीर कालीन समाज की विसंगतियों के उल्लेख की आवश्यकता नहीं। कबीर अधर्म जन्य विश्रृंखल समाज का विरोध ही नहीं करते वरन् सहज एवं सत्य धर्म के स्वरूप को निर्दिष्ट करते हुए कहते हैं कि उसका आधार चरित्र, संयम एवं हृदय तथा मन की स्वच्छता है। यथा–जे मन नहि तजे विकारा, तो क्यूँ तिरिये भो पारा। जब मन छाड़े कुटिलाई तब आइ मिले राम राई कबीर धर्म के अन्तर्गत सातात्त्विक, नैतिकता इत्यादि को भी महत्त्व देते हुए समाज के लिए ऐसे सहज धर्म का निर्देशन करते हैं, जो साधक को स्तुति निन्दा, आशा एवं मान अभिमान से मुक्त कर देता है। यथा–असतुति निन्दा आसा छोड़ तजे मान अभिमाना। लोहा कंचन समि करि देखे ते मूरति भगवान भौतिक जगत में मानव समाज के अतिरिक्त जीव जन्तुओं का भी एक विशाल संसार है। मनुष्यों का साथ

इनका घनिष्ठ संबंध भी होता है। इतना ही नहीं वनस्पति जगत की परिवर्तन–परिवर्धन एवं संवेदनशील होता है। भारतीय दर्शन के अनुसार आत्मा सर्वव्यापी है। यह संसार के सभी पदार्थों में व्याप्त है। अतः मानव जीव–जन्तु एवं वनस्पतियाँ आध्यात्मिक एकता से परिपूर्ण हैं।

इस आधार पर कहा जा सकता है कि आध्यात्मिक एवं भौतिक दोनों धरातल पर इन सबको मिलाकर एक विशाल समाज की सृष्टि होती है। समाज के इस विशाल परिप्रेक्ष्य के प्रत्येक अंग के प्रति कबीर काव्य में संवेदनशीलता के दर्शन होते हैं। द्रष्टव्य है –भूली मालनि पाती तोड़े, पाती पाली जीव। जा मूरति को पाती तोड़े, सो मूरति निरजीव। जीव–जन्तुओं के प्रति उनकी जागरूकता विलक्षण है यथा–जीव वधत अरू धरम कहते हो, अधरम कहाँ है भाई। आपन तो मुनि जन हैं बैठे, कासनि कहौ कसाई प्रस्तुत तथ्यों के प्रकाश में यह स्पष्ट रूप से विदित होता है कि कबीर सुशिष्ट और संयत समाज के लिए समाज की अधिकांश इकाईयों से संबंधित स्पष्ट विचारधारा रखते हैं। समाज की आधारभूत इकाई व्यक्ति के लिए उन्होंने गुण ग्रहण की क्षमता से युक्त संयम और सदाचार के आदर्श को आवश्यक माना है। यद्यपि महिला कल्याण के विषय पर यथोचित विचार प्रस्तुत नहीं किये उसे कबीर की सीमा के रूप में उल्लेखित किया जाता है, परन्तु सामाजिक व्यवस्था में उनके लिए कुछ आवश्यक गुणों के रूप में चरित्र पतिव्रत एवं सतीत्व का उल्लेख अवश्य किया है। कबीर साहित्य में आध्यात्मिक एवं सामाजिक दोनों संदर्भों में गुरु को विशेष महत्ता प्राप्त है। धार्मिक विभेद वर्ण व्यवस्था एवं साम्प्रदायिक वैमनस्य का विरोध करके धार्मिक एवं साम्प्रदायिक एकता को उन्होंने सामाजिक साम्य के मूल रूप में रेखांकित किया है। वर्ण भेद को कबीर समाज की विखण्डनकारी शक्ति के रूप में देखते हुए उसे समाप्त करने का आह्वान करते हैं।

कबीर के अनुसार आर्थिक वैषम्य समाज में अव्यवस्था उत्पन्न करता है। अतः स्वस्थ समाज के लिए वैषम्य समाप्ति आवश्यक है। मानव के साथ उसके परिवेश को जोड़कर जिस विशाल समाज का सृजन होता है, उसके अन्तर्सम्बंधों के संदर्भ में कबीर का दृष्टिकोण स्पष्ट एवं संरचनात्मक है। उपर्युक्त विवेचन–विश्लेषण के आलोक में कहा जा सकता है कि कबीर ने आध्यात्मिक क्षेत्र में जिस सहज सिद्धान्त को निर्धारित कर उसकी अनुभूति प्राप्त की उसी अनुभूति के आधार पर उन्होंने समाज में साम्य स्थापित करने हेतु समाज कल्याण की भावना से संचालित स्वस्थ एवं सुसंगठित समाज संबंधी विचारों का

प्रतिपादन किया। समाज संबंधी यह वैचारिक प्रतिपादन कबीर साहित्य का आदम प्रतिपादन है।

संत कबीर निर्गुण मत के अनुयायी कवि है। भक्ति काल में निर्गुण भक्तों में कबीर को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। भारतभूमि जो अनेक रत्नों की खान रही है उन्हीं महान् रत्नों में से एक थे संत कबीर। कबीर का अरबी भाषा में अर्थ है – महान् वे भक्त और कवि बाद में थे, पहले समाज सुधारक थे। वे सिकन्दर लोदी के समकालीन थे। कबीर की भाषा सधुक्कड़ी थी तथा उसी भाषा में कबीर ने समाज में व्याप्त अनेक रूढ़ियों का खुलकर विरोध किया है। हिन्दी साहित्य में कबीर के योगदान को नकारा नहीं जा सकता। रामचन्द्र शुक्ल ने भी उनकी प्रतिभा मानते हुए लिखा है " प्रतिभा उनमें बड़ी प्रखर थी। "

कबीर के समय में देश संकट की घड़ी से गुजर रहा था। सामाजिक व्यवस्था पूरी तरह से डगमगाई हुई थी। अमीर वर्ग, वैभव-विलासिता का जीवन जी रहा था, वहीं गरीब दो वक्त की रोटी के लिए तरस रहा था। हिन्दू और मुस्लिम के बीच जाति-पांति, धर्म और मजहब की खाई गहरी होती जा रही थी। एक महान क्रान्तिकारी कवि होने के कारण उन्होंने समाज में व्याप्त कुरीतियों, बुराईयों को उजागर किया। संत कबीर भक्तिकालीन एकमात्र ऐसे कवि थे जिन्होंने राम-रहीम के नाम पर चल रहे पाखंड, भेद-भाव, कर्म-कांड को व्यक्त किया था। आम आदमी जिस बात को कहने क्या सोचने से भी डरता था, उसे कबीर ने बड़े निडर भाव से व्यक्त किया था। कबीर ने अपनी वाणी द्वारा समाज में व्याप्त अनेक बुराईयों को दूर करने का प्रयास किया। उनके साहित्य में समाज सुधार की जो भावना मिलती है। उसे हम इस प्रकार से देख सकते हैं।

धार्मिक पाखण्ड का विरोध करते हुए कबीर कहते हैं भगवान को पाने के लिए हमें कहीं जाने की जरूरत नहीं है। वह तो घट -घट का वासी है। उसे पाने के लिए हमारी आत्मा शुद्ध होनी चाहिए। भगवान न तो मंदिर में है, न मस्जिद में है। वह तो हर मनुष्य में है।

''कस्तुरी कुण्डली बसै, मृग ढूंढें बन माँहि।
एसै घटि घटि राम हैं, दुनियाँ देखै नाँहि।।

"माला फेरत जुग गया, गया न मन फेर,
कर का मनका डारि के मन का मनका फेर। "

कबीर ने मूर्ति पूजा की भी कड़े शब्दों में निंदा की है। अगर पत्थर पूजने से भगवान मिलता है तो मैं तो पूरे पहाड़ को ही पूजने लग जाऊंगा।

"कबीर पाथर पूजे हरि मिलै, तो मैं पूजूँ पहार।
घर की चाकी कोउ न पूजै, जा पीसा खाए संसार।।"4

कबीर जी हिंसा का विरोध करते हैं। एक जीव दूसरे जीव को खाता है तो कबीर को बहुत ही टीस होती है। वे उन्हें समझाते हुए कहते हैं –

बकरी पाती खात है, ताकी काठी खाल,
जो नर बकरी खात है, तिनको कौन हवाल।"

कबीर के अनुसार, जिसमें प्रेम, दया व करूणा भावना है वही सबसे बड़ा ज्ञानी है। बड़े-बड़े ज्ञानी भी प्रेम भावना के बिना मूर्ख के समान है।

"पोथी पढ़ी-पढ़ी जग मुआ पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का पढ़े, सो पंडित होय"।

साथ ही कबीर जी मनुष्य को समझाते हुए कहते हैं कि यह मनुष्य जीवन क्षण-भर के लिए है। इस पर हमें घमण्ड नहीं करना चाहिए। यह तो पानी के बुलबुले के समान पल में नष्ट हो जाएगा। हमें इसे अच्छे कर्मों में लगाना चाहिए।

"पानी केरा बुदबुदा, उस मानस की जाति।
एक दिनाँ छिप जाता है, जो तारा प्रभात।"

कबीर ने समाज में व्याप्त जाँति-पाँति व ऊँच-नीच की भी कड़े शब्दों में निंदा की है। वे मनुष्य के ज्ञान व कर्म को महान मानते हुए कहते हैं –

"जाँति न पूछो साधा की पूछ लीजिए ज्ञान।
मोल करो तलवार का पड़ा रहने दो म्यान।"

कबीर ने गुरू को बहुत महत्त्व दिया है। उनकी अहम् प्रेरणा का मूल स्रोत उनके गुरू ही थे जिनकी कृपा से उन्होंने सभी संकीर्ण बन्धनों को तोड़ा, वे स्वतन्त्र-चिन्तक, उन्होंने बहुत-सी ज्ञानपूर्ण सच्चाईयों को सामान्य जन तक पहुँचाया, आत्म-ज्ञान प्राप्त करना, मूल सत्य से परिचित होना, इस सब कार्यों की प्रेरणा देने वाले उनके गुरू ही थे। वही इस मार्ग को बताने वाले थे।

"सतगुर की महिमा अनंत, अनंत किया उपगार,
लोचन अनंत उघाड़िया, अनंत दिखावण हार॥"

कबीर ने गुरू को परमात्मा से भी बड़ा दर्जा दिया है तथा वो कहते हैं कि गुरू ही की भक्ति के द्वारा हमें परमात्मा मिलते हैं। वो कहते हैं –

"गुरू गोबिन्द दोउ खड़े, काकै लागू पाय।
बलिहारी गुरू आपने, गोबिन्द दियो बताय।
सतगुरू हमसे रीझकर, एक कहा परसंग।
बरसा बादल प्रेम का, भीज गया सब अंग।"

कबीर ने नारी की निंदा की है। उन्होंने नारी को भक्ति के मार्ग में बाधा माना है। नारी को माया स्वरूप माना है –

"नारी कीझांई परै, अंधा होत भुजंग।
कबीर तिन की कौन गति, जो नित नारी के संग॥"

कबीर जी नाथ योग से प्रभावित थे। इसी कारण उन्होंने नारी को माया स्वरूप माना है तथा साथ ही उन्होंने पतिव्रता नारी की भूरी–भूरी प्रशंसा भी की है।

"पतिव्रता मैली भली, काली कुचित कुरूप।
वाकै एके रूप पर, वारूं कोटि स्वरूप॥"

धार्मिक सुधार ओर समाज सुधार का घनिष्ठ सम्बन्ध है। धर्म सुधारक को समाज सुधारक होना पड़ता है। कबीर ने भी समाज सुधार के लिए अपनी वाणी का उपयोग किया है। कबीर के अनुसार जन्म से ही कोई द्विज या शूद्र अथवा हिन्दू व मुसलमान नहीं हो सकता। इसको कबीर ने कितने सीधे किन्तु मन में रखने वाले ढंग से कहा है –

"जौ तूँ बाँभन बंभनी जाया। तो आन वाट है क्यों नहिं आया॥
जौ तूँ तुरक तुरकनी का जाया। तौ भीतर खतना क्यों न कराया॥"

कबीर ने उच्चता और नीचता का संबंध व्यवसाय के साथ नहीं जोड़ा है, क्योंकि कोई व्यवसाय नीचा नहीं है। अपने को जुलाहा कहने में भी उनहोंने कहीं

संकोच नहीं किया और वे स्वयं भी जीवनभर ये काम करते रहते। वे उन ज्ञानियों में से नहीं थे, जो हाथ पाँव समेट कर पेट भरने के लिए समाज के ऊपर भार बनकर रहते हैं। वे परिश्रम का महत्त्व जानते थे और आजीविका के लिए ही जुलाहे का काम करते रहे।

कबीर जी धन सम्पत्ति जोड़ना भी उचित नहीं समझते थे। उन्होंने थोड़े में ही संतोष करने का उपदेश दिया है। कबीर जी ने आगे की पीढ़ी के लिए भी धन का संचय न करने का उपदेश दिया है – क्योंकि वे जानते थे कि अगर संतान अच्छी व संस्कारी है तो उसके लिए धन की जरूरत नहीं है। अगर संतान आलसी है तो वह सारे संचित धन को बेकार में व्यर्थ कर देगा। इसलिए कबीर ने कहा है–

पूत कपूत तो क्यों धन संचय
पूत सपूत तो क्यों धन संचय।

कबीरदास जी ने सुकर्म के साथ-साथ लोगों को उद्यम करने का भी उपदेश दिया है जिससे आर्थिक तंगी से निपटा जा सके और पेट भरने के लिए किसी दूसरे पर निर्भर ना रहें।

परिश्रम करने की शिक्षा देने का कबीर जी का मकसद गरीबों की गरीबी दूर करना तो था ही, साथ में देश व समाज की उन्नति करने से भी था। इसलिए कबीर कहते थे –

''कबीर उद्यम अवगुण को नहीं, जो करि जाने कोय।
उद्यम में आनन्द है, सांई सेती होय॥"

उन्होंने जीवन को क्षण भंगुर बता कर, लोगों को भक्ति और मानव सेवा का फल प्राप्त करने व साथ ही मनुष्य को दुष्कर्म करने के प्रति भी सचेत किया है।

"पानी केरा बुदबुदा, अस मानुस की नात,
एक दिना छिप जाएगा, ज्यों तारा परभात।"

इसमें कबीर ने मनुष्य के शरीर को क्षण भंगुर कहा है कि जिस प्रकार पानी का बुलबुला क्षण में ही नष्ट हो जाता है उसी प्रकार मनुष्य शरीर भी पल में नष्ट हो जाएगा। इसलिए हमें अच्छे कर्म करने चाहिए।

डॉ. पारसनाथ तिवारी लिखते हैं "सच्ची बात यह है कि हिन्दी साहित्य में कबीर से बड़ा मानवतावादी कोई नहीं हुआ। उन्होंने तत्कालीन भारतीय समाज में प्रचलित समस्त अंधविश्वासों, रूढ़ियों तथा मिथ्या सिद्धान्तों द्वारा प्रचारित सामाजिक विषमताओं का मूलोच्छेद करने का बीड़ा उठाया और निर्भयता पूर्वक पाखंडों पर प्रहार किया। "

उनकी सबसे बड़ी विशेषता एकत्व की भावना का समर्थन है। डॉ. रामजीलाल के अनुसार – " कबीर ने सामाजिक विषमता को मिटाकर एकत्व की स्थापना का निश्चय किया। कबीर को प्रगतिशील कहने में हमें कोई संकोच नहीं होना चाहिए। पाँच सौ-छः सौ वर्ष पूर्व कही गई बात आज भी प्रासंगिक व सम-सामयिक है। " कबीर ने व्यक्ति व समाज को एक दूसरे का पूरक माना है। इस तरह से कबीर भक्त, योगी व दार्शनिक होने के साथ -साथ समाज सुधारक भी थे। कबीर ने समाज सुधार के लिए प्रबल प्रयत्न कर तात्कालीन समाज को अंधकार से निकालने का भरसक प्रयास किया।

इस तरह से कबीर ने जीवन के सभी पहलुओं में झांका है। उनकी वाणियों में सम्पूर्ण जीव जगत के लिए कल्याण का मार्ग झलकता था जो आज भी समाज के लिए दर्पण का काम करता है। कबीरदास का जीवन, मानवीय गुणों से ओत-प्रोत था, वे सभी जीवों को समदृष्टि से देखते थे, किसी व्यक्ति विशेष की न तो कभी निन्दा करते थे और न ही स्तुति। वे उस व्यक्ति व समाज की बुराईयों की खुलकर निंदा करते थे, जिनमें उनको आडम्बर, पाखण्ड व ढोंग नजर आता था, ऐसे में वो खुलकर बोलते थे -

हिन्दू के दया नहीं, मेहर तुरक के नाहिं।
कहें कबीर दोनों गए, लख चौरासी माहिं॥

कबीर लोक कल्याणकारी भावना के प्रबल समर्थक थे। वे अहंकारियों का विरोध कर निम्न वर्गीय लोगों के पक्षधर थे। वे कहते हैं -

दुर्बल को न सताइये, जाकी मोटी हाय।
मुई खाल की सांस सो, लोह भसम हो जाय॥

कबीर जी स्वयं एक गृहस्थ थे, इसलिए वे गृहस्थ व वैरागी दोनों को समान आदर देते थे -

"बैरागी विरक्त भला, गिरही चित्त उदार।
दूहूं चूका रीता पड़े, ताकूं बार न पार॥"

कबीर जी पूरे विश्व को एक कुटुम्ब मानते हैं। इसलिए वे पूरे विश्व का ही सुधार चाहते हैं –

"सीलवन्त सबसे बड़ा, सर्व रतन की खानि
तीन लोक की संपदा, रही सील में आनि॥"

अतः हम कह सकते हैं कि कबीर अपने समय एवं समाज के कटु आलोचक ही नहीं समाज को लेकर स्वप्न द्रष्टा भी थे। उनके मन में भारतीय समाज का एक प्रारूप था जिस पर वे एक विजन के साथ काम कर रहे थे। " वे मुसलमान होकर भी असल में मुसलमान नहीं थे। वे हिन्दू होकर भी हिन्दू नहीं थे। साधु होकर भी योगी नहीं थे, वे वैष्णव होकर भी वैष्णव नहीं थे। "

इस प्रकार कबीर का अपने समाज के प्रति दृष्टिकोण वैज्ञानिक एवं व्यवस्थित था, वो किसी प्रकारके बाह्य आडंबर तथा शोषण के खिलाफ खड़े थे। इस संदर्भ में हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा भी है कि " कबीरदास ऐसे ही मिलन बिन्दु पर खड़े थे, जहाँ एक ओर हिन्दुत्व निकल जाता था, दूसरी ओर मुसलमान, जहाँ एक ओर ज्ञान निकल जाता है, दूसरी ओर अशिवा, जहाँ एक ओर ज्ञान भक्ति मार्ग निकल जाता है, दूसी ओर योगमार्ग, जहाँ एक ओर निर्गुण भावना निकल जाती है, दूसरी ओर सगुण साधना। उसी प्रशस्त चौराहे पर वे खड़े थे। वे दोनों को देख सकते थे और परस्पर विरूद्ध दिशा में गये मार्गों के गुण दोष उन्हें स्पष्ट दिखाई दे जाते थे।"

6

कबीर की भक्ति

कबीर ने अपनी भक्ति में जिस निर्गुण आराध्य का वर्णन किया है, वह उपनिषदों की अद्वैती भावना के प्रभाव से प्रभावित है। कबीर की ब्रह्मभावना अधिकांश अद्वैती है, किन्तु कहीं अद्वैत से भिन्न भी है। इसलिये कबीर किसी सिद्धान्त के अनुयायी नहीं न ही प्रस्थापक हैं। उनका ब्रह्म उनके अनुभवों की देन है। कबीर पहले साधक हैं फिर कवि। वे अपनी भक्ति साधना में जिस जिस रूप में अपने ब्रह्म का साक्षात्कार करते हैं उसी रूप में उसे वर्णित करते जाते हैं। वे निज ब्रह्म विचार और आतम साधना में विश्वास करते हैं। यही कारण है कि कबीर का ब्रह्म कभी किसी रूप में कभी किसी रूप में हमारे सामने आता है। यह तर्क और किसी दार्शनिक सिद्धान्त से बहुत ऊपर है, बस अनुभवों और अनुभूतियों का विषय है।

कबीर कहते हैं–

''कस्तूरी कुण्डल बसै, मृग ढूंढे बन माहिं।
ऐसे घट घट राम हैं, दुनिया देखे नाहिं॥''

वे ईश्वर की अद्वैत सत्ता को स्वीकार करते हैं। वास्तव में उनका प्रभु रोम रोम और सृष्टि के कण कण में बसा है। वह मन में होते हुए भी दूर दिखाई देता है, किन्तु जब प्रियतम पास ही हो तो उसे संदेश भेजने की क्या आवश्यकता? इसलिये कबीर कहते हैं–

''प्रियतम को पतिया लिखूं, कहीं जो होय बिदेस।
तन में, मन में, नैन में, ताकौ कहा संदेस''

वास्तव में प्रिय के साथ इस संदेश व्यवहार को वे दिखावा मात्र मानते हैं, कृत्रिमता मानते हैं। जब ईश्वर रूपी प्रिय की सत्ता हर स्थान पर विद्यमान हो तो इस दिखावे की आवश्यकता क्या है?

''कागद लिखै सो कागदी, कि व्यवहारी जीव।
आतम दृष्टि कहा लिखै, जित देखे तित पीव॥'

कबीर ने अपने प्रिय की उपस्थिति उसी प्रकार सर्वत्र मानी है जिस प्रकार अद्वैत भावना के पोषक प्रतिबिम्बवाद में। वे भी ईश्वर की सर्वव्यापकता को गहराई से अनुभव किया करते थे।

''ज्यूं जल में प्रतिबिम्ब, त्यूं सकल रामहि जानीजै।''

इन दोहों में प्रकाशित उनकी अद्वैत भावना के साथ यह स्वतः ही स्पष्ट हो जाता है कि उनका ब्रह्म निर्गुण निराकार है।

''जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है, बाहर भीतर पानी।
फूटा कुम्भ जल जलहि समाना, इहिं तथ कथ्यौ ज्ञानी॥''
''जाके मुंह माथा नहीं, न ही रूप सुरूप।
पुहुप बास ते पातरा ऐसा तत्त्व अनूप॥''

कबीर की निर्गुण भक्ति में साकार ब्रह्म के जो तत्त्व आ गये हैं, वे कोरे तीव्र भक्ति भावना के द्योतक नहीं हैं, अपितु जन मन में साकार स्वरूप की जो उपासना प्रचलित थी उसका विरोध करते हुए भी कबीर कहीं न कहीं उसके प्रभाव से बच नहीं सके हैं। वास्तव में लोकप्रचलित परम्परा कहीं न कहीं प्रतिबिम्बित हो ही जाती है। कबीर की भक्ति सरस और विलक्षण है, जिसे आप किसी सीमा में नहीं बांध सकते। कबीर ने भक्ति को मुक्ति का एकमात्र साधन माना है।

''भक्ति नसैनी मुक्ति की।''
''क्या जप क्या तप क्या संजम क्या व्रत और क्या अस्नान
जब लगी जुगत न जानिये, भाव भक्ति भगवान॥''

सर्वस्व समर्पण के साथ साथ अपने अस्तित्त्व को साध्य में लीन करने की उत्कृष्ट भावना कबीर में परिलक्षित होती है। यही कारण है कि वे ईश्वर के गुलाम बनने में भी नहीं हिचकते।

''मैं गुलाम मोहि बेचि गुंसाई।
तन मन धन मेरा राम जी के तांई॥''

ईश्वर सामीप्य की भावना तो उनसे यह तक कहलवा लेती है;

''कबीर कूता राम का, मुतिया मेरा नाऊँ।
गले राम की जेवडी जित खैंचे तित जाऊँ॥
विरह भी कबीर की भक्ति का एक अंग है।''
''मन परतीति न प्रेम रस, ना इस तन में ढंग।
क्या जाणौ उस पीव सूं कैसी रहसि संग॥''

कबीर काव्य की यह तडप अद्‌भुत है। ऐसे अलौकिक प्रिय को जब आत्मा नहीं पाती तो उसके वियोग में विचलित रहती है। जब से गुरु ने उस परमात्मा का ज्ञान करवाया है, भक्त तभी से उसके लिये व्याकुल है।

''गूंगा हुआ बावला,बहरा हुआ कान।
पाँऊ थें पंगुल भया, सतगुरु मारा बान॥''

कबीर के भक्ति व्याकुल मन ने विरह का जो वर्णन किया है वह इतना मार्मिक तथा स्वाभाविक है कि लगता है कबीर का पौरुषत्व यहाँ समाप्त हो गया है और उनकी आत्मा ने स्त्री रूप में प्रियतम के लिये यह शब्द कहे हैं।

''बिरहनी उभी पंथ सिरि, पंथी बूझै धाई।
एक सबद कह पीव का कबर मिलेंगे आई॥''

जब भक्त का मन विरह से दग्ध हो उठता और प्रिय के वियोग में टूक टूक हुआ जाता है तब वह विवश हो ईश्वर से यह कह बैठता है।

''कै बिरहणी कूं मीच दै, कै आपा दिखलाए।
आठ पहर का दाझणा, मो पै सहा न जाए॥''

वास्तव में यह प्रेम का चरमोत्कर्ष है, जो प्रभु प्रियतम के अभाव में भी आत्मा परमात्मा, भक्त भगवान के अटूट प्रेम की उद्घोषणा कर रहा है।

कबीर की भक्ति में निष्काम भाव है कि यदि उन्हें प्रभु प्राप्त भी हो जाएँ तो उनसे वे किसी कामना सिद्धि की बात नहीं सोचते। उनकी एकमात्र कामना है;

''नैनन की करि कोठरी, पुतली पलंग बिछाय।
पलकन की चिक डारिकै, पिय को लेऊं रिझाय॥''
भक्ति में कामना के घोर विरोधी थे कबीर;
''जब लगि भगति सकामता तब लगि निष्फल सेव''

इसलिये अन्त समय में भी कबीर ने प्रभु में ध्यान लगाने की बात कही है।

'' कबीर निरभै राम जपि, जब लग दीवै बाती।
तेल घटया बाती बुझी, सोवेगा दिन राति॥''

कबीर की भक्ति में पुस्तकीय ज्ञान का कोई महत्त्व नहीं था। उनका विश्वास था कि ईश्वर में लगायी अटूट लय ही मुक्ति के लिये काफी है। भक्त के लिये तो बस इतना काफी है कि वह विषय वासनाओं से मुक्त हो ईश्वरीय प्रेम को प्राप्त करे।

'' पोथि पढ पढ जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का पढे सो पंडित होय॥''
'' कबीर पढिवा दूर कर, पोथी देय बहाय।
बावन आखर सोध कर, रमैं ममैं चित्त लाय॥''

कबीर की भक्ति में कोई भेदभाव नहीं। भक्ति के द्वार सबके लिये खुले हैं। सबकी रचना उन्हीं पंच तत्त्वों से हुई है और सबका रचयिता वही पिता परमात्मा है।

'' जाति पांति पूछै नहिं कोई।
हरि को भजै सो हरि का होई॥''

कबीर के अनुसार भक्ति मार्ग पर तो एकमात्र मार्गदर्शक गुरु ही हैं। गुरु के बिना भक्ति मार्ग कौन प्रशस्त करेगा?

''सतगुरु की महिमा अनत, अनत किया उपकार।
लोचन अनत उघाडिया, अनत दिखावन हार॥''

उस पर साधु संगति, जिसकी महिमा का भी कोई बखान नहीं। इसे कबीर ने स्वर्ग से अधिक महत्त्व दिया है।

''राम बुलावा भेजिया, दिया कबीरा रोय।
जो सुख साधु संग में, सो बैकुंठ न होय॥''

कबीर की भक्ति अद्‌भुत है, बहुत समर्पित जो कि गंगा के समान पवित्र है,जिसके कई कई पावन घाटों पर जाने कितनी भटकते मन रूपी हिरणों को विश्रान्ति मिलती है।

कहां कबीर कहां हम

आपने अपने वेबसाइट पर निमंत्रण दिया है, कबीर साहब के विषय में लिखने के लिये। आपने छोटे-छोटे दीयों से कहा है,

सूरज के विषय में लिखने के लिये। आपने नन्ही नन्ही बूंदों से कहा है, सागर के विषय में लिखने के लिये। क्या ये संभव है? कदापि नहीं। क्योंकि हमारी दृष्टि बहुत तंग है। हमारी बुद्धि बहुत छोटी है। हमारा ज्ञान बहुत सीमित है। पहले हमें उस स्थान को, उस स्तर को प्राप्त करना होगा। हमें अपनी बुद्धि को, अपने ज्ञान को उस सीमा तक विकसित करना होगा, जहां पहुँच कर हम कबीर साहब के बारे में कुछ लिख सकें। हमें स्वयं को बहुत ऊंचा उठाना होगा, कबीर साहब को समझने के लिये। कबीर साहब के बारे में लिखना तो बहुत दूर की बात हो गई। सच तो यह है कि हमारा बौद्धिक और आतमिक स्तर इतना गिर चुका है कि हम सही बात की व्याख्या भी गलत करते हैं। हम सही को गलत और गलत को सही देखते और समझते हैं। हमारे पूर्वजों ने बडी मेहनत से सत्य को खोजा। उन्होंने दया और सहानुभूतिवश वह सत्य हमें बता दिया। यानि हमें बिना मेहनत किये वह सत्य मिल गया। किन्तु हमसे वह सत्य संभाला न गया। हममें इतनी सूझबूझ, इतनी बुद्धि, इतना ज्ञान न था कि हम उस सत्य को रख पाते। उसे सम्मान दे पाते, उसे उसका सही स्थान दे पाते। हमने अपने आलस्य, अपने झूठे अभिमान के कारण वह सत्य खो दिया। वह सत्य जो हमारी विरासत थी और है। उसे खो देने से हम आधे धार्मिक और आधे अधार्मिक हो गए। नक्शा तो हमारे पास था और है, लेकिन हम उसे ठीक-ठीक पढ और समझ नहीं पा रहे हैं। फिर जितना भी चलो, मंजिल मिलना कठिन है।

भारतीय समाज में भक्तों के दोहों, गीतों और उपदेशों को पढा और सुना जाता है।या यूं कहना गलत न होगा कि भारत में ज्यादातर भक्तों को ही पूजा जाता है।पर क्यों? किस लिए? उनके किस गुण के कारण? ये जानने में हमारी ज्यादा दिलचस्पी नहीं है और बहुत कम लोग ही जानते होंगे। उससे भी बहुत कम होंगे जो उन पर चल और अमल कर रहे होंगे। इसके बावजूद भी हम उन्हें अक्सर पढते और सुनते हैं। उनकी तस्वीरों के आगे धूप और दीप भी जलाते हैं। उनके सामने माथा भी रगडते हैं। उन्हें नमस्कार भी करते हैं। परन्तु उनके उपदेशों पर चलने की खातिर नहीं, बल्कि सिर्फ इस खुशफहमी में कि ऐसा करने से वे खुश हो जाएंगे। खुश होकर, वे भगवान् से हमारी सिफारिश करेंगे। उनकी सिफारिश पर भगवान् हमारे लिए स्वर्ग के द्वार खोल देंगे या हमें मोक्ष दे देंगे। इससे बडा मजाक और क्या कर सकते हैं हम अपने आपसे? कबीर साहब ने सही कहा था-

साधो देखो जग बौराना,
सांची कहौं तो मारन धावै,
झूठे जग पतियाना।

हम सचमुच पागल हो गए हैं। किसी चीज को पाने के लिए कर्म करना पडता है। किसी चीज को समझने के लिए, उसका अनुभव करना आवश्यक होता है। किसी चीज के सुख, दु:ख और आनंद को जानने के लिए, उसका भोगना अति आवश्यक होता है। परन्तु हम वो महामानव हैं, जो बिना अनुभव के ज्ञान का दावा तो कर ही रहे हैं, साथ ही साथ ज्ञान का उपदेश भी दे रहे हैं। हम वो शूरवीर हैं, जो बातों से स्वर्ग और मोक्ष पाने का दावा कर रहे हैं। जबकि हम खुद नहीं जानते कि स्वर्ग या मोक्ष क्या हैं? भारतीय समाज में गिने चुने लोग ही हुए, जिन्होंने सत्य को अनुभव किया। अनुभव करने के बाद उन्होंने घोषणा की –

मन तू जोत सरूप है, अपना मूल पछान।
हम अमृत की संतान हैं और हम खुद अमृत हैं।

हम आनंद से आते हैं, आनंद में रहते हैं और आनंद में ही चले जाते हैं। सृष्टि के कण–कण में ईश्वर का बास है। सृष्टि में जो भी है सब हमारा है, उसे त्यागपूर्वक भोगो।

क्या अर्थ हैं उपरोक्त वाक्यों के? क्या हम इन्हें समझ पाए? क्या हमने इन्हें समझने की कोशिश की या कोशिश कर रहे हैं? कबीर साहब उन गिने चुने महापुरूषों में से एक थे, जिनमें इसे जानने और समझने का साहस था। जिनमें प्रभुके प्रति प्रेम था, लगन थी। इसीलिए उन महावीरों ने कहा –

सुरा सो पहचानिए, जो लडे दीन के हेत,
पुर्जा पुर्जा कट मरे, कभी न छाडे खेत।

उन्होंने जीवन के हर अंग, हर ढंग और हर रंग को भोगा और अनुभव किया। जो अनुभव किया, जो जाना और जो पाया, उसे कहा भी और बांटा भी। और उसतक पहुँचने का तरीका भी बताया। वह तरीका है प्रेम और लगन। इसीलिए कबीर साहब ने कहा था

पोथी पढ पढ जग मुया, पंडित भयो न कोए,
ढाई आखर प्रेम के जो, पडे सो पंडित होए।

लेकिन खेद है कि हममें न तो प्रेम है और न ही लगन। बिना प्रेम और लगन के साहस भी पैदा नहीं होता। हमने केवल उन महापुरूषों के शब्दों और

वचनों को पकड रखा है। उनके उपदेशों को दोहराते दोहराते, हम कर्महीन हो गए। अपनी मूर्खता और अज्ञानता के कारण, हमने मुक्ति को बंधन और स्वर्ग को नर्क बना दिया। न हमने सत्य को पाया और न असत्य को छोड़ा। हम मानव से दानव बन गए। मुझे इकबाल साहब का एक शेर याद आता है –

मस्जिद तो बना दी शब भर में, इमां की हरारत बालों ने,
मन अपना पापी पुराना, बरसों में नमाजी बन न सका।

कबीर साहब ने हमें वह दिया, जो भगवान् का भक्त ही दे सकता है। कबीर साहब ने हमारी गली थामकर, हमें चलना सिखाया। हमें रास्ता दिखाया और हमें मंजिल के निशान तक बताए। अब ये हमारा धर्म है कि हम उनके प्रति और अपने प्रति सच्चे और ईमानदार हों। या तो हम कबीर साहब बन जाएं और सत्य को खोजें और सत्य को अनुभव करें। या फिर इतनी मेहनत जरूर करें कि उनके उपदेशों को समझ सकें और उन पर अमल कर सकें। किसी हालत में भी हम उनके उपदेशों का गलत प्रचार या प्रसार न करें। बल्कि उन्हें सही रूप में स्वीकार करें। अगर हम इतना ही कर सकें तो यही कबीर साहब के बारे में लिखना और कहना होगा। यही कबीर साहब को हमारी नमस्कार होगी।यही कबीर साहब के प्रति हमारा आदर होगा। यही कबीर साहब के प्रति हमारा सम्मान होगा।

लनह–लनह कई सौ सालों में कोई एक महापुरुष ही धरती पर जन्म लेता है, जो समाज में अलग राह बनाकर सर्वोपरि स्थान हासिल करता है। समाज में अपने हित को अलग रखकर समाज के लिए काम करने वाले विरले ही होते हैं। हमारे देश में ऐसे कई कवि, ऋषि, मुनि, महापुरुष आदि हुए हैं, जिन्होंने अपना सारा जीवन समाज कल्याण के लिए अर्पित कर दिया, ऐसे ही एक महापुरुष हुए हैं संत कबीर. संत कबीर यानि गोस्वामी तुलसीदास के बाद संत–कवियों में सर्वोपरि।

'कबीर' भक्ति आन्दोलन के एक उच्च कोटि के कवि, समाज सुधारक एवं भक्त माने जाते हैं। समाज के कल्याण के लिए कबीर ने अपना सारा जीवन समर्पित कर दिया। संता रामानंद के बारह शिष्यों में कबीर बिरले थे जिन्होंने गुरु से दीक्षा लेकर अपना मार्ग अलग ही बनाया और संतों में वे शिरोमणि हो गए।

कबीर का जन्म और विवादों का साया

एक ही ईश्वर में विश्वास रखने वाले कबीर के बारे में कई धारणाएँ हैं। उनके जन्म से लेकर मृत्यु तक मतभेद ही मतभेद हैं। उनके जन्म को लेकर भी

कई धारणाएं हैं। कुछ लोगों के अनुसार वे गुरु रामानन्द स्वामी के आशीर्वाद से काशी की एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। ब्राह्मणी उस नवजात शिशु को लहरतारा(Lehartara) ताल के पास फेंक आई। उस बालक को नीरू (Niru) नाम का जुलाहा अपने घर ले आया। नीरू की पत्नी 'नीमा' (Nima) ने ही बाद में बालक कबीर का पालन-पोषण किया। एक जगह खुद कबीरदास ने कहा है –

"जाति जुलाहा नाम कबीरा, बनि बनि फिरो उदासी"

कबीर पन्थियों की मान्यता है कि कबीर का जन्म काशी में लहरतारा तालाब में उत्पन्न कमल के मनोहर पुष्प के ऊपर बालक के रूप में हुआ। कुछ लोगों का कहना है कि वे जन्म से मुसलमान थे और युवावस्था में स्वामी रामानंद के प्रभाव से उन्हें हिन्दू धर्म की बातें मालूम हुई।

कबीर का विवाह कन्या "लोई' के साथ हुआ था। जनश्रुति के अनुसार उन्हें एक पुत्र कमाल तथा पुत्री कमाली थी। कबीर का पुत्र कमाल उनके मत का विरोधी था। जिसके बारे में संत कबीर ने खुद लिखा है–

बूड़ा बंस कबीर का, उपजा पूत कमाल।
हरि का सिमरन छोडि के, घर ले आया माल।

कबीर पढ़े-लिखे नहीं थे और यह बात उनके एक दोहे से पता चलती है, जो कुछ इस प्रकार से है–

मसि कागद छूवो नहीं, कलम गही नहिं हाथ।

जिस समय कबीर का जन्म हुआ था उस समय देश की स्थिति बेहद गंभीर थी। जहां एक तरफ मुसलमान शासक अपनी मर्जी के काम करते थे वहीं हिंदुओं को धार्मिक कर्म-काण्डों से ही फुरसत नहीं थी। जनता में भक्ति-भावनाओं का सर्वथा अभाव था। पंडितों के पाखंडपूर्ण वचन समाज में फैले थे। ऐसे समय में संत कबीर ने समाज के कल्याण के लिए अपनी वाणी का प्रयोग किया।

कबीर धर्मगुरु थे, इसलिए उनकी वाणियों का आध्यात्मिक रस ही आस्वाद्य होना चाहिए, परन्तु विद्वानों ने नाना रूप में उन वाणियों का अध्ययन और उपयोग किया है। काव्य-रूप में उसे आस्वादन करने की तो प्रथा ही चल पड़ी है। समाज–सुधारक के रूप में, सर्व-धर्म समन्वयकारी के रूप में, हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य-विधायक के रूप में भी उनकी चर्चा कम नहीं हुई है।

कबीर की वाणी को हिंदी साहित्य में बहुत ही सम्मान के साथ रखा जाता है। दूसरी ओर गुरुग्रंथ साहिब में भी कबीर की वाणी को शामिल किया गया

है। कबीर की वाणी का संग्रह 'बीजक'(Bijak) नाम से है। बीजक पंजाबी, राजस्थानी, खड़ी बोली, अवधी, पूरबी, ब्रजभाषा आदि कई भाषाओं की खिचड़ी है। कबीरदास ने बोलचाल की भाषा का ही प्रयोग किया है। भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था। कबीर ने शास्त्रीय भाषा का अध्ययन नहीं किया था, पर फिर भी उनकी भाषा में परम्परा से चली आई विशेषताएँ वर्तमान हैं।

Kabir हिन्दी साहित्य के हजार वर्षों के इतिहास में कबीर जैसा व्यक्तित्त्व लेकर कोई लेखक उत्पन्न नहीं हुआ, महिमा में यह व्यक्तित्त्व केवल एक ही प्रतिद्वन्द्वी जानता है, परन्तु तुलसीदास और कबीर के व्यक्तित्त्व में बड़ा अन्तर था। यद्यपि दोनों ही भक्त थे, परन्तु दोनों स्वभाव, संस्कार और दृष्टिकोण में एकदम भिन्न थे। मस्ती, फक्कड़ाना स्वभाव और सबकुछ को झाड़-फटकार कर चल देने वाले तेज ने कबीर को हिन्दी-साहित्य का अद्वितीय व्यक्ति बना दिया है।

एक ईश्वर की धारणा में विश्वास रखने वाले कबीर ने हमेशा ही धार्मिक कर्मकण्डों की निंदा की। सर्व-धर्म समंवय के लिए जिस मजबूत आधार की जरूरत होती है वह वस्तु कबीर के पदों में सर्वत्र पाई जाती है। कबीरदास एक जबरदस्त क्रान्तिकारी पुरुष थे।

जन्म के बाद कबीर की मृत्यु पर भी काफी मतभेद हैं। कुछ लोग मानते हैं कि कबीर ने मगहर में देह त्याग किया था और उनकी मृत्यु के बाद हिंदुओं और मुस्लिमों में उनके शव को लेकर विवाद उत्पन्न हो गया था। हिन्दू कहते थे कि उनका अंतिम संस्कार हिन्दू रीति से होना चाहिए और मुस्लिम कहते थे कि मुस्लिम रीति से हो। इसी विवाद के दौरान जब शव से चादर हटाई गई तो वहां शव की जगह फूल मिले जिसे हिंदुओं और मुस्लिमों ने आपस में बाँटकर उन फूलों का अपने अपने धर्म के अनुसार अंतिम संस्कार किया।

बेशक आज हमारे बीच कबीर नहीं हैं, लेकिन उनकी रचनाओं ने हमें जीने का नया नजरिया दिया है। ऐसी मान्यता है कि अगर कोई व्यक्ति कबीर के दोहे के अनुसार अपनी जिंदगी को आगे बढ़ाता है तो निश्चय ही वह एक सफल पुरुष बन जाएगा।

कबीर के कुछ प्रसिद्ध दोहे

गुरु गोविंद दोउ खड़े, काके लागूं पाँय।
बलिहारी गुरु आपने, गोविंद दियो मिलाय ॥
बड़ा भया तो क्या भया, जैसे पेड़ खजूर।

पंथी को छाया नहीं फल लागे अति दूर ।।2।।
काल करे सो आज कर, आज करे सो अब ।
पल में परलय होएगी, बहुरि करेगा कब ।।3।।
कबीरा जब हम पैदा हुए, जग हँसे हम रोये,
ऐसी करनी कर चलो, हम हँसे जग रोये ..

कबीर की भक्ति के सामाजिक सन्दर्भ की प्रासंगिकता पर विचार

हर युग का साहित्य अपने समय के समाज से प्रभावित होता है। साहित्य या आध्यात्मिक चेतना के लिए समाज-निरपेक्ष होना संभव नहीं है। कबीर की आध्यात्मिक चेतना अथवा उनकी भक्ति की विशेषता यही है कि यह समाज से जुड़ी हुई है। उनकी भक्ति में सामान्य गृहस्थों के लिए भी स्थान है तथा यह भौतिक जगत की भी पूर्णत: उपेक्षा नहीं करती है। उनकी कविता भी इसी कारण से विशिष्ट है। कबीर की कविता निरीह-शोषित जनता के साथ खड़ी होती है, उनका स्वर बनती है तथा शोषक सामंत वर्ग का जोरदार ढंग से विरोध भी करती है।

कबीर की कविता अथवा उनकी भक्ति या साधना-पद्धति की सामाजिक प्रासंगिकता पर विचार करने के क्रम में इस बात पर भी विचार करना होगा कि कबीर की भक्ति किन सामाजिक और मनोवैज्ञानिक कारकों का प्रतिफल है? सामाजिक परिवर्तन में उसकी भूमिका क्या है? तथा समाज के लिए उसकी उपयोगिता क्या है?

कबीर मध्ययुगीन संत कवि है। मध्य-युग हिंदी साहित्य के इतिहास में अत्यंत महत्त्वपूर्ण काल रहा है। मध्ययुग का पूर्वार्द्ध जहाँ भक्ति आंदोलन का काल रहा है वहीँ इसका उत्तरार्द्ध घोर भौतिकवादी मान्यताओं वालें रीतिग्रंथकारों का भी काल रहा है। भारत में मध्ययुग सामाजिक उत्तल-पुथल का काल रहा है। शोषक सामंत, निर्धनों और निम्नवर्ग का शोषण कर रहें थें। निम्नवर्ग अथवा स्पष्ट कहें तो निचली जातियाँ एक ओर तो तो सामंती उत्पीड़न से बेहाल थीं तथा दूसरी ओर सामाजिक भेद-भाव से से त्रस्त थीं। जाति-पाति का भेद-भाव अपने चरम पर था। मानवीय मूल्यों का ह्रास होता जा रहा था तथा पाखण्ड और आडम्बर की जड़े तेजी से फैलती जा रहीं थी। कबीर का जन्म ऐसे ही समय में हुआ था।

कबीर निम्न तबके के जुलाहे थें। उन्होंने सामाजिक भेद-भाव का विष-दंश झेल था। जाति प्रथा पर आधारित जन्मगत श्रेष्ठता का प्रचलन तथा श्रेष्ठ गुणों का तिरस्कार आदि उन्होंने स्वयं देखा था। कबीर को ये भेद-भाव स्वीकार नहीं थें। अतः उन्होंने व्यक्ति को जन्म के आधार पर नहीं, कर्मों और गुणों के आधार पर श्रेष्ठ माना है-

'जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिये ज्ञान।
मोल करों तलवार की पड़ी रहन दो म्यान।।'

कबीर निर्गुण भक्ति और शंकर के अद्वैत को अपनाया। इन दोनों के लिए ही काफी उच्च ज्ञान तथा बौद्धिकता अनिवार्य है। कबीर न तो ब्राह्मण थें और नहीं पर्याप्त रूप से शिक्षित ही थें, फिर उन्होंने ऐसा मत क्यों चुना?

कबीर उच्च कोटि के मानवतावादी संत थें। प्रारम्भ में बड़े सरल और भावुक रहे होंगे। उनकी सरलता उनमें बची रही, बाद में उनकी अक्खड़ता-फक्कड़ता के रूप में स्थान्तरित हो गई, क्योंकि जो सरल होता है वही बेबाक होता है, परन्तु उनकी भावुकता के साथ क्या हुआ?

अपने हिंदी साहित्य के इतिहास स्वयं आचार्य शुक्ल लिखते है की रामानंद जी के प्रभाव के कारण उन्हें हिन्दू रीति-रिवाज आकर्षित करते थें-'वे राम-राम जपा करते और कभी-कभी माथे पर तिलक भी लगा लेते थें।'

यह संभव है कि, बाल्यावस्था में सगुण भक्ति की ओर इनकी रुचि रही हो परन्तु यदि ऐसा था तो इन्होंने निर्गुण भक्ति क्यों स्वीकार की? रामानंद जी स्वयं सगुणोपासक थे एवं सगुन रामोपासना का उपदेश देते थे।

गंगा तट वाली घटना में भी उन्होंने कबीर से यही कहा था कि 'राम-राम बोल'। उनके इस राम का आशय सगुन राम से था, फिर कबीर की गुरु भक्ति की भावना भी विख्यात है-

'गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागू पाय।
बलिहारी गुरु आपनै, गोविन्द दियो बताय।।'
'यह तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान।'

आखिर क्या कारण था कि रामानंद जी के मन्त्र को भी कबीर ने अपनी मान्यता के अनुसार परिवर्तित करके ही स्वीकार किया?

यदि यह संभव है की कबीर सगुन भक्ति तथा हिंदू रीति-रिवाजों (भक्ति की पद्धति) के प्रति आकर्षित थे, तब यह भी संभव है कि उनके कार्यों का यथा नाम जप तथा तिलक लेपन आदि का विरोध हुआ हो। हिंदू-मुस्लिम दोनों

ने इसका विरोध किया होगा। बालक कबीर पर इसका क्या प्रभाव पड़ा होगा? हिन्दू मुस्लिम, ऊँच-नीच का भेद-भाव, छूआ-छूत इन सबने कबीर को अंदर से झकझोर दिया। कबीर की भावुकता दब गई तथा उनके स्थान पर भेद-भाव के विरोध के लिए आवश्यक जुझारूपन उनके अंदर विकसित हुआ।

सगुण भक्ति को स्वीकार न करने के दो प्रमुख कारण हो सकते हैं। प्रथम और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कारण यह की सगुण भक्ति चाहे-अनचाहे ब्राह्मणवादी पौराणिकता, सामंती रुढ़िओं और भेद-भाव का पोषण करती है। मानव-मानव में समानता की जो भावना कबीर चाहतें थे, वह सगुण भक्ति में संभव नहीं थी। दूसरा कारण मेरे अनुसार कहीं न कहीं यह भी हो सकता है कि इस्लामिक संस्कारों और मान्यताओं के अनुसार सगुण भक्ति इनके अनुकूल न थी।

कबीर मानव मात्र से प्रेम से प्रेम करते थे। इनके लिए सब सामान है, कोई भेद नहीं है। न कोई राजा है, न कोई रंक है, न कोई पंडित है, न कोई मूर्ख, न कोई ब्राह्मण है, न कोई शूद्रय सभी उसी परमब्रह्म के अंश हैं, सभी ब्रह्म हैं।

शंकर के अद्वैत को स्वीकार करने के पीछे इनका यह मानव मात्र के प्रति प्रेम तथा उनकी समदृष्टि ही कारण था। इस प्रकार इनकी भक्ति साधना और इनके दार्शनिक विचार सब समाज के द्वारा ही उत्प्रेरित थें।

कबीर एक भक्त के साथ ही समाज सुधारक के रूप में भी प्रसिद्ध हैं। समाज सुधार के उनके कार्य या उनकी कविता, की सामाजिकता का अध्ययन हम निम्नांकित बिन्दुओं के अंतर्गत करेंगे।

'एकता और समन्वय का प्रयास, जाति-पाति का विरोध'-

कबीर का समाज ऊँच-नीच, सवर्ण-कुवर्ण, ब्राह्मण-शूद्र, शोषक-शोषित, हिन्दू-मुसलमान इत्यादि में बँटा था ही समाज का ईश्वर भी बँटा हुआ थ। हिन्दू-मुसलमान में वैमनस्य बढ़ रहा था।-

'संतौ देखहु जग बौराना हिन्दू कहे मोहि राम पियारा तुरक कहे रहिमाना।'

तत्कालीन समाज में ईर्ष्या और द्वेष से भरा वातावरण था, परन्तु कबीर को हिंदू और मुसलमान दोनों ही प्यारे थे। ये तो, मानव मात्र से प्रेम करते थे, इनके लिए सब बराबर थें। अतः ये एक ऐसा पंथ बनना चाहते थे, ऐसी साधना पद्धति विकसित चाहते थे जिससे हिन्दू और मुसलमान दोनों स्वीकार कर सकें। इसीलिए इन्होंने निर्गुण भक्ति का आश्रय लिया तथा राम और रहीम को एक बताकर उस एक सच्चे ईश्वर की आराधना का उपदेश दिया, जो सबसे ऊपर है, जो परमतत्त्व है, परमात्मा है। सामाजिक भेद-भाव का स्वाद इन्होंने स्वाम

चखा था। समाज को तोड़ने वाली इन विभेदकारी रूढ़ियों को ये कभी प्रोत्साहित नहीं कर सकते थे। इन्होंने मानव मात्र की एकता पर बल दिया–

'एक बून्द एकै मल–मूतर, एक चाम एक गुदा। एक जोति से सब उत्पन्ना, को बाह्मन को सूदा।।'

इन्होंने बताया कि सब उसी राम के अंश हैं, अन्य सभी भेद माया जनित भ्रम हैं तथा जिन लोगों ने अपने आपको श्रेष्ट घोषित करने का प्रयास किया उन्हें इन्होंने डाँट भी लगाई–

'ऊंचे कुल का जनमिया, करनी ऊँच न होय। सुबरन कलश सूरा भरा, साधू निंदै सोय'

'जो तू बाभन बभनी जाया, आन राह तै क्यों नहीं आया।
जो तू तुरक तुरकनी जाया, भीतर खतना क्यों न कराया।।'

इस प्रकार कबीर ने जनता और जनता के ईश्वर को एक कर सामाजिक एकता को बल प्रदान किया।

माध्यम मार्ग का अनुसरण

कबीर की भक्ति माध्यम मार्गी थी। कबीर न तो शरीर का दमन कर घोर तप करने को कहते है और न ही विषय–वासना आदि में रत रहने को कहते हैं। ये जानते थे कि 'यदि शरीर को अधिक कष्ट देकर भगवान का भजन किया गया तो वह अधिक दिनों तक बचेगा नहीं और यदि विषयासक्त होकर भजन किया जाएगा तो मन भजन की और उन्मुख नहीं होगा।' घोर तप साधारण जनता के लिए संभव भी नहीं था। इसीलिए कबीर ने माध्यम मार्ग का उपदेश दिया। ये स्वयं उच्च कोटि के साधक होकर भी अपना पैतृक कर्म करते रहें। इस तरह इन्होंने न तो धन–संग्रह में ही जी–जान से लग जाने का उपदेश दिया है न ही यही कहा है की घर–बार छोड़ कर निकम्मे फकीर बन जाओ। इनके अनुसार धन का उतना ही संग्रह करना चाहिए, जिससे परिवार का पालन–पोषण भी हो जाए तथा घर आया अतिथि भी भूखा न जाए।

7

संत कबीर के दार्शनिक विचार

कबीर निर्गुण ब्रह्म के उपासक, एक समाज सुधारक,एक भक्त कवि, तथा एक सच्चे मानवतावादी संत थें। ये एक सीधे-साधे और सच्चे साधक थें, अत: इन्होनें कोई दार्शनिक सम्प्रदाय नहीं खड़ा किया, वरन तत्कालीन भारत में प्रचलित दर्शनों से जो कुछ भी उन्हें भला एवं अनुकूल प्रतीत इन्होनें उसे ग्रहण कर लिया। इन्होनें हिन्दुओं से अद्वैतवाद को ग्रहण किया तथा सूफियों के भावनात्मक रहस्यवाद के के द्वारा उसे एक नया रूप दे दिया। इन्होनें सिद्धों तथा नाथ योगियों की योग साधना तथा हठयोग को ग्रहण किया और वैष्णवों से अहिंसा तथा 'प्रपत्ति' भाव लिया। इस प्रकार कबीर ने 'सार-सार को' ग्रहण किया तथा जोकुछ भी 'थोथा' लगा उसे उड़ा दिया।

कबीर ने अपनी दार्शनिक मान्यताओं को बड़े सीधे और सहज ढंग से सरल भाषा में जनसामान्य के सम्मुख प्रस्तुत किया। चूँकि इनके सारे काव्य-कर्म का केंद्र सामान्य जनता है, जो कि दार्शनिक मान्यताओं से दूर अपने दैनिक जीवन में संघर्षरत है तथा जो अशिक्षित भी है, इसलिए कबीर ने सीधी एवं सरल भाषा का प्रयोग किया है।

इनकी दार्शनिक मान्यताओं को निम्नांकित बिन्दुओं के अंतर्गत विवेचित किया जा सकता है।

ब्रह्म

कबीर ने निर्गुण ब्रह्म की उपासना की। इन्होनें निर्गुण ब्रह्म के लिए 'राम' नाम का प्रयोग किया है। ऐसा प्रसिद्ध है की ब्रह्ममुहूर्त में घात पर सोए कबीर

पर रामानंद जी के पैर पड़े तो उन्होंने कहा–'राम–राम कह'। रामानंद जी के इसी कथन को कबीर ने गुरु मंत्र मान लिया और राम की भक्ति करने लगें। परन्तु उनके राम दशरथी राम नहीं है, वे तो अगम–अगोचर और अविनाशी। स्वयं कबीर अपने राम के विषय में कहतें हैं –

दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना,
राम नाम का मरम है आना।

तथा,

कस्तूरी कुंडली बसै, मृग ढूंढै बन माहि।
ऐसे घट–घट राम हैं, दुनिया देखत नाहीं।।

वे कहते है की राम कस्तूरी की सुगंध के सामान सुक्ष्म है और हर किसी के अंतर में उसका निवास है पर हर कई वनों और गुफाओं, कर उनकी तलाश कर रहा है। राम जब प्रत्येक के अंतर में निवास करते है तो उन्हें मंदिर,मस्जिद आदि बाहरी स्थानों में ढूँढने की क्या आवश्यकता है? राम के दर्शन तो कुण्डलिनी जागृत कर षड्चक्र भेदन भर से स्वयं के अंतर में ही संभव है।

राम का वर्णन करते–करते कभी–कभी कबीर अपने परवर्ती महाकवि तुलसीदास के सामान, या फिर यूँ कहुँ कि तुलसीदास की भाषा का ही प्रयोग करने लगते है। तुलसीदास जी ने निर्गुण ब्रह्म के वर्णन के क्रम में लिखा है–

'बिनु पग चलै सुनै बिनु काना। कर बिनु कर्म करै विधी नाना।

कबीर ने भी लिखा है –

जाके मुँह माथा नहीं नाही रूप कुरूप

तुलसीदास ने भी निर्गुण ब्रह्म के विषय में 'नेति–नेति' लिखा है –

अगम–निगम पुरान, नेति–नेति कह जासु गुन करहु निरंतर ध्यान।

कबीर भी इसी तरह कहते है –

हाँ कहूँ तो है नहीं, न कहूँ तो है।
है नहीं के बीच में, जो कछु है सो है।।

कबीर के राम अगम, अगोचर, अविनाशी, अरूप, अनाम,निराकार तथा निरंजन हैं। वह तेजोमय हैं, उनके अलौकिक तेज की समता करोड़ों सूर्यों का संयुक्त प्रकाश भी नहीं कर सकता है। राम लोकातीत हैं, फिर भी लोक में सर्वत्र व्याप्त हैं। 'घट–घट' में उनका निवास है तथा बहार प्रकृति में भी हर ओर उनका ही प्रतबिम्ब है। राम सबके अंदर हैं तथा सब राम के अंदर है, बिलकुल सागर में डूबे घड़े के समान।

जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है, बाहर भीतर पानी।

वास्तव में कबीर को निरुणोपासना अपने अनुकूल लगी जबकि गुरु रामानंद जी सगुण राम की उपासना का उपदेश दिया करते थें। इनके अपने मत और इस्लामिक संस्कारों के कारण निर्गुणोपासना इन्हे अपेक्षाकृत अधिक भाया और इस तरह कबीर के राम रामानंद के राम से भिन्न हो गए।

जीव

कबीर मूलतः अद्वैतवादी हैं उनके अनुसार जीव का कोई स्वतंत्र अस्तित्त्व नहीं है बल्कि वह तो उसी परमतत्त्व का अंश है। कोई राजा नहीं, कोई रंक नहीं, न कोई कोई ब्राह्मण है न कोई शूद्र ही है, सब राम के ही अंश हैं।

'यह तत् वह तत् एक है, एक प्राण दुइ जात।
अपने जिय से जानिये, मेरे जिय की बात'

जीव और ब्रह्म के अद्वैत को और स्पष्ट करने के लिए कबीर कहते है की जैसे जल से हिम बनता है और हिम भी जल में ही बदल जाता है, वैसे ही परात्मा से ही आत्मा की उत्पत्ति होती है तथा आत्मा पुनः परमात्मा में ही विलीन हो जाती है। परमात्मा सृस्टि के कण-कण में व्याप्त है तथा जीव भी उसी परमात्मा का अंश है। अतः परमात्मा हमारे अंतर में भी विद्यमान है।

'जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है बाहर भीतर पानी।
फूटा कुम्भ जल जलहि सामना, यह तथ कह्यौ गयानी'

परमात्मा से विलग हो कर आत्मा जगत के मोह-माया में लिप्त होकर अज्ञानवश भटकती रहती है, परन्तु जैसे ही भ्रम दूर होता है, जीवात्मा सांसारिक बंधनों से मुक्त होकर ब्रह्मस्वरूप हो जाती है।

'झल उठी झोली जाली, खपरा फूटम फूटि।
जोगी था सो रमि गया, आसण रही विभूति'

'जगत -कबीर शंकर के मायावाद से प्रभावित थे। अतः इन्होंने जगत को मिथ्या माना है। जगत का कोई अस्तित्त्व नहीं है, माया के कारण इसकी सत्ता का आभास होता है। यह संसार क्षणभंगुर है, यहाँ सब कुछ अनित्य है।

'यह संसार कागद की पुड़िया, बूँद पड़े घुल जाना है।'

'माया -कबीर के अनुसार माया ' परमब्रह्म की एक रहस्यमयी शक्ति है, जो विश्वमयी नारी के रूप में प्रकट होकर' जीवात्माओं को विषय वासना के

बंधन में फसा कर रखती है। जीवात्मा सहज ही उसकी त्रिगुणात्मक श्फाँस' में फंस कर पथ से विपथ हो जाती है।

'कबीर माया मोहिनी, जैसे मीठी खांड।'

माया सर्वत्र व्याप्त है तथा यह भाटी-भाटी से साधक को विचलित करती है। काम, क्रोध, मद, मोह और मत्सर नामक इसके पांच पुत्र है, जो जीवों को तरह-तरह से सताते हैं।

माया बुद्धि को भ्रमित जीवात्मा-परमात्मा में द्वैत का ब्रम्ह उत्पन्न कर देती है। माया का प्रभाव इंतना गहरा होता है की शरीर की समाप्ति के बाद भी इसका प्रभाव समाप्त नहीं होता है।

'माया मुई न मन मुआ, मरि-मरि गया शरीर।'

माया रुपी इस अन्धकार का पार पाना मानव के लिए अत्यंत दुष्कर है, केवल सद्गुरु की कृपा ही इससे मुक्ति दिला सकती है।

8

कबीर की भाषा शैली

कबीर सन्त कवि और समाज सुधारक थे। उनकी कविता का एक-एक शब्द पाखंडियों के पाखंडवाद और धर्म के नाम पर ढोंग व स्वार्थपूर्ति की निजी दुकानदारियों को ललकारता हुआ आया और असत्य व अन्याय की पोल खोल धज्जियाँ उडाता चला गया। कबीर का अनुभूत सत्य अंधविश्वासों पर बारूदी पलीता था। सत्य भी ऐसा जो आज तक के परिवेश पर सवालिया निशान बन चोट भी करता है और खोट भी निकालता है।

भाषा और शैली

कबीरदास ने बोलचाल की भाषा का ही प्रयोग किया है। भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था। वे वाणी के डिक्टेटर थे। जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा है, उसे उसी रूप में कहलवा लिया—बन गया है तो सीधे-सीधे, नहीं दरेरा देकर। भाषा कुछ कबीर के सामने लाचार-सी नजर आती है। उसमें मानो ऐसी हिम्मत ही नहीं है कि इस लापरवा फक्कड़ कि किसी फरमाइश को नाहीं कर सके। और अकह कहानी को रूप देकर मनोग्राही बना देने की तो जैसी ताकत कबीर की भाषा में है वैसी बहुत ही कम लेखकों में पाई जाती है। असीम-अनंत ब्रह्मानन्द में आत्मा का साक्षीभूत होकर मिलना कुछ वाणी के अगोचर, पकड़ में न आ सकने वाली ही बात है। पर 'बेहद्दी मैदान में रहा कबीरा' में न केवल उस गम्भीर निगूढ़ तत्त्व को मूर्तिमान कर दिया गया है, बल्कि अपनी फक्कड़ाना प्रकृति की मुहर भी मार दी गई है। वाणी के ऐसे बादशाह

को साहित्य-रसिक काव्यानंद का आस्वादन कराने वाला समझें तो उन्हें दोष नहीं दिया जा सकता। फिर व्यंग्य करने में और चुटकी लेने में भी कबीर अपना प्रतिद्वन्द्वी नहीं जानते। पंडित और काजी, अवधु और जोगिया, मुल्ला और मौलवी-सभी उनके व्यंग्य से तिलमिला जाते थे। अत्यन्त सीधी भाषा में वे ऐसी चोट करते हैं कि खाने वाला केवल धूल झाड़ के चल देने के सिवा और कोई रास्ता नहीं पाता।

इस प्रकार यद्यपि कबीर ने कहीं काव्य लिखने की प्रतिज्ञा नहीं की तथापि उनकी आध्यात्मिक रस की गगरी से छलके हुए रस से काव्य की कटोरी में भी कम रस इकट्ठा नहीं हुआ है। कबीर ने जिन तत्त्वों को अपनी रचना से ध्वनित करना चाहा है, उसके लिए कबीर की भाषा से ज्यादा साफ और जोरदार भाषा की सम्भावना भी नहीं है और जरूरत भी नहीं है। परन्तु कालक्रम से वह भाषा आज के शिक्षित व्यक्ति को दुरूह जान पड़ती है। कबीर ने शास्त्रीय भाषा का अध्ययन नहीं किया था, पर फिर भी उनकी भाषा में परम्परा से चली आई विशेषताएँ वर्तमान हैं। इसका ऐतिहासिक कारण है। इस ऐतिहासिक कारण को जाने बिना उस भाषा को ठीक-ठीक समझना सम्भव नहीं है। इस पुस्तक में उसी ऐतिहासिक परम्परा के अध्ययन का प्रयास है। यह प्रयास पूर्ण रूप से सफल ही हुआ होगा, ऐसा हम कोई दावा नहीं करते, परन्तु वह ग्रहणीय नहीं है, इस बात में लेखक को कोई सन्देह नहीं है।

पंचमेल खिचड़ी भाषा

कबीर की रचनाओं में अनेक भाषाओं के शब्द मिलते हैं यथा -अरबी, फारसी, पंजाबी, बुन्देलखंडी, ब्रजभाषा, खड़ीबोली आदि के शब्द मिलते हैं इसलिए इनकी भाषा को 'पंचमेल खिचड़ी' या 'सधुक्कड़ी' भाषा कहा जाता है। प्रसंग क्रम से इसमें कबीरदास की भाषा और शैली समझाने के कार्य से कभी-कभी आगे बढ़ने का साहस किया गया है। जो वाणी के अगोचर हैं, उसे वाणी के द्वारा अभिव्यक्त करने की चेष्टा की गई है, जो मन और बुद्धि की पहुँच से परे हैं, उसे बुद्धि के बल पर समझने की कोशिश की गई है, जो देश और काल की सीमा के परे हैं, उसे दो-चार-दस पृष्ठों में बाँध डालने की साहसिकता दिखाई गई है। कहते हैं, समस्त पुराण और महाभारतीय संहिता लिखने के बाद व्यासदेव ने अत्यन्त अनुताप के साथ कहा था कि 'हे अधिल

विश्व के गुरुदेव, आपका कोई रूप नहीं है, फिर भी मैंने ध्यान के द्वारा इन ग्रन्थों में रूप की कल्पना की है, आप अनिर्वचनीय हैं, व्याख्या करके आपके स्वरूप को समझा सकना सम्भव नहीं है, फिर भी मैंने स्तुति के द्वारा व्याख्या करने की कोशिश की है। वाणी के द्वारा प्रकाश करने का प्रयास किया है। तुम समस्त-भुवन-व्याप्त हो, इस ब्रह्मांण्ड के प्रत्येक अणु-परमाणु में तुम भिने हुए हो, तथापि तीर्थ-यात्रादि विधान से उस व्यापित्व को खंडित किया है। भला जो सर्वत्र परिव्याप्त है, उसके लिए तीर्थ विशेष में जाने की क्या व्यवस्था? सो हे जगदीश, मेरी बुद्धिगत विकलता के ये तीन अपराध-अरूप की रूपकल्पना, अनिर्वचनीय का स्तुतिनिर्वचन, व्यापी का स्थान-विशेष में निर्देश–तुम क्षमा करो।' क्या व्यास जी के महान् आदर्श का पदानुसरण करके इस लेखक को भी यही कहने की जरूरत है?–

रूपं रूपविवर्जितस्य भवतो ध्यानेन यत्कल्पितम्,
स्तुत्या निर्वचनीयता खिलगुरोदूरी कृतायन्मया।
व्यापित्वं च निराकृतं भगवतो यत्तीर्थयात्रदिना,
क्षन्तव्यं जगदशी, तद् विकलता-दोषत्रयं मत्कृतम्॥

वृद्धावस्था में यश और कीर्त्ति ने उन्हें बहुत कष्ट दिया। उसी हालत में उन्होंने बनारस छोड़ा और आत्मनिरीक्षण तथा आत्मपरीक्षण करने के लिये देश के विभिन्न भागों की यात्राएँ कीं। इसी क्रम में वे कालिंजर जिले के पिथौराबाद शहर में पहुँचे। वहाँ रामकृष्ण का छोटा सा मन्दिर था। वहाँ के संत भगवान गोस्वामी जिज्ञासु साधक थे, किंतु उनके तर्कों का अभी तक पूरी तरह समाधान नहीं हुआ था। संत कबीर से उनका विचार-विनिमय हुआ। कबीर की एक साखी ने उन के मन पर गहरा असर किया–

बन ते भागा बिहरे पड़ा, करहा अपनी बान।
करहा बेदन कासों कहे, को करहा को जान॥

मूर्त्ति पूजा को लक्ष्य करते हुए कबीरदास ने कहा है–

पाहन पूजे हरि मिलैं, तो मैं पूजौं पहार।
या ते तो चाकी भली, जासे पीसी खाय संसार॥

रूपातीत व्यंजना और खंडन मंडन

प्रेम भक्ति को कबीरदास की वाणियों की केन्द्रीय वस्तु न मानने का ही यह परिणाम हुआ है कि अच्छे-अच्छे विद्वान् उन्हें घमंडी, अटपटी वाणी

का बोलनहारा, एकेश्वरवाद और अद्वैतवाद के बारीक भेद को न जानने वाला, अहंकारी, अगुण-सगुण-विवेक-अनभिज्ञ आदि कहकर अपने को उनसे अधिक योग्य मानकर संतोष पाते रहे हैं। यह मानी हुई बात है कि जो बात लोक में अहंकार कहलाती है वह भगवत्प्रेम के क्षेत्र में, स्वाधीनभर्तृका नायिका के गर्व की भाँति अपने और प्रिय के प्रति अखंड विश्वास की परिचायक है, जो बात लोक में दब्बूपन और कायरता कहलाती है, वही भगवत्प्रेम के क्षेत्र में भगवान के प्रति भक्त का अनन्य परायण आम्तार्पण होती है और जो बातें लोक में परस्पर विरुद्ध जँचती हैं भगवान के विषय में उनका विरोध दूर हो जाता है। लोक में ऐसे जीव की कल्पना नहीं की जा सकती जो कर्णहीन होकर भी सब कुछ सुनता हो, चक्षुरहित बना रहकर भी सब कुछ देख सकता हो, वाणीहीन होकर भी वक्ता हो सकता हो, जो छोटे-से-छोटा भी हो और बड़े-से-बड़ा भी, जो एक भी हो और अनेक भी, जो बाहर भी हो भीतर भी, जिसे सबका मालिक भी कहा जा सके और सबका सेवक भी, जिसे सबके ऊपर भी कहा जा सके और सर्वमय सेवक भी, जिसमें समस्त गुणों का आरोप भी किया जा सके और गुणहीनता का भी, और फिर भी जो न इन्द्रिय का विषय हो, न मन का, न बुद्धि का। परन्तु भगवान के लिए सब विशेषण सब देशों के साधक सर्व-भाव से देते रहे हैं। जो भक्त नहीं हैं, जो अनुभव के द्वारा साक्षात्कार किए हुए सत्य में विश्वास नहीं रखते, वे केवल तर्क में उलझकर रह जाते हैं, पर जो भक्त हैं, वे भुजा उठाकर घोषणा करते हैं, 'अगुणहिं-सगुणहिं नहिं कछु भेदा' (तुलसीदास)। परन्तु तर्क परायण व्यक्ति इस कथन के अटपटेपन को वदतो-व्याघात कहकर संतोष कर लेता है।

कबीरदास का भक्त रूप

कबीरदास का यह भक्त रूप ही उनका वास्तविक रूप है। इसी केन्द्र के इर्द-गिर्द उनके अन्य रूप स्वयमेव प्रकाशित हो उठे हैं। मुश्किल यह है कि इस केन्द्रीय वस्तु का प्रकाश भाषा की पहुँच से बाहर है। भक्ति कहकर नहीं समझाई जा सकती, वह अनुभव करके आस्वादन की जा सकती है। कबीरदास ने इस बात को हजार तरीके से कहा है। इस भक्ति या भगवान के प्रति अहैतुक अनुराग की बात कहते समय उन्हें ऐसी बहुत-सी बातें कहनी पड़ीं हैं, जो भक्ति नहीं हैं। पर भक्ति के अनुभव करने में सहायक हैं। मूल वस्तु चूँकि वाणी के अगोचर

है, इसलिए केवल वाणी का अध्ययन करने वाले विद्यार्थी को अगर भ्रम में पड़ जाना पड़ा हो तो आश्चर्य की कोई बात नहीं है। वाणी द्वारा उन्होंने उस निगूढ़ अनुभवैकगम्य तत्त्व की और इशारा किया है, उसे ध्वनित किया गया है। ऐसा करने के लिए उन्हें भाषा के द्वारा रूप खड़ा करना पड़ा है और अरूप को रूप के द्वारा अभिव्यक्त करने की साधना करनी पड़ी है। काव्यशास्त्र के आचार्य इसे ही कवि की सबसे बड़ी शक्ति बताते हैं।

9

कबीर की रचनाएँ

कबीरदास ने हिन्दू-मुसलमान का भेद मिटा कर हिन्दू-भक्तों तथा मुसलमान फकीरों का सत्संग किया और दोनों की अच्छी बातों को हृदयांगम कर लिया। संत कबीर ने स्वयं ग्रंथ नहीं लिखे, मुँह से बोले और उनके शिष्यों ने उसे लिख लिया। कबीरदास अनपढ़ थे। कबीरदास के समस्त विचारों में राम-नाम की महिमा प्रतिध्वनित होती है। वे एक ही ईश्वर को मानते थे और कर्मकाण्ड के घोर विरोधी थे। अवतार, मूर्ति, रोजा, ईद, मस्जिद, मंदिर आदि को वे नहीं मानते थे। कबीर के नाम से मिले ग्रंथों की संख्या भिन्न-भिन्न लेखों के अनुसार भिन्न-भिन्न है। कबीर की वाणी का संग्रह 'बीजक' के नाम से प्रसिद्ध है। इसके तीन भाग हैं-

(1) रमैनी

(2) सबद

(3) साखी

इसमें वेदांत तत्त्व, हिन्दू-मुसलमान को फटकार, संसार की अनित्यता, हृदय की शुद्धि, प्रेमसाधना की कठिनता, माया की प्रबलता, मूर्तिपूजा, तीर्थाटन आदि की असारता, हज, नमाज, व्रत, आराधन की गौणता इत्यादि अनेक प्रसंग हैं। सांप्रदायिक शिक्षा और सिद्धांत के उपदेश मुख्यत: 'साखी' के भीतर हैं, जो दोनों में हैं। इनकी भाषा सधुक्कड़ी अर्थात् राजस्थानी और पंजाबी मिली खड़ी बोली है, पर 'रमैनी' और 'सबद' में गाने के पद हैं, जिनमें काव्य की ब्रजभाषा और कहीं-कहीं पूरबी बोली का भी व्यवहार है।

यह ऐसा संसार है, जैसा सेंबल फूल।
दिन दस के व्यौहार को, झूठे रंग न भूलि।। -कबीर
काजल केरी कोठरी, काजल ही का कोट।
बलिहारी ता दास की, जे रहै राम की ओट।। -कबीर
हम देखत जग जात हैं, जब देखत हम जांह।
ऐसा कोई ना मिलै, पकड़ि छुड़ावै बांह।। -कबीर

बीजक

'बीजक' कबीरदास के मतों का पुराना और प्रामाणिक संग्रह है, इसमें संदेह नहीं। एक ध्यान देने योग्य बात इसमें यह है कि 'बीजक' में 84 रमैनियाँ हैं। रमैनियाँ चौपाई छंद में लिखी गई हैं। इनमें कुछ रमैनियाँ ऐसी हैं। जिनके अंत में एक-एक साखी उद्धृत की गई है। साखी उद्धृत करने का अर्थ यह होता है कि कोई दूसरा आदमी मानों इन रमैनियों को लिख रहा है और इस रमैनी-रूप व्याख्या के प्रमाण में कबीर की साखी या गवाही पेश कर रहा है। जालंधरनाथ के शिष्य कुण्णपाद (कानपा) ने कहा है– 'साखि करब जालंधरि पाए', अस्तु बहुत थोड़ी-सी रमैनियाँ (नं. 3,28 32, 42, 56, 62, 70, 80) ऐसी हैं, जिनके अंत में साखियाँ नहीं हैं। परंतु इस प्रकार उद्धृत करने का क्या अर्थ हो सकता है? इस पुस्तक में मैंने 'बीजक' को निस्संकोच प्रमाण-रूप में व्यवहृत है, पर स्वय 'बीजक' ही इस बात का प्रमाण है कि साखियों को सबसे अधिक प्रामाणिक समझना चाहिए, क्योंकि स्वंय 'बीजक' ने ही रमैनियों की प्रामाणिकता के लिए साखियों का हवाला दिया है। इसीलिए कबीरदास के सिद्धांतों की जानकारी का सबसे उत्तम साधन साखियाँ है।

कबीर रचनावली

कबीरदास की वाणियों के अनेक संग्रह प्रकाशित हुए है, पर उनमें सबसे अच्छा सुसंपादित संस्करण अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' की 'कबीर' रचनावली है। यह भी काशी नागरी प्रचारिणी सभा का ही प्रकाशन है। कबीरदास के पदों में जितने संबोधन हैं उन सबका एक-न-एक खास प्रयोजन है। जब उन्होंने 'अवधू' या 'अवधूत' को पुकारा है तो यथासंभव अवधूत की ही भाषा में उसी के क्रिया-कलाप की आलोचना की है। इस प्रसंग में उनकी युक्ति और तर्कशैली पूर्णरूप से अवधूत-जैसी रहती है। जब वे पंडित या पाँडे को संबोधित

करते हैं तो वहाँ भी उनका उद्देश्य पंडित की ही भाषा में पंडित की ही युक्तियों के बल पर उसके मत का निरास करना होता है। इसी तरह मुल्ला, काजी आदि संबोधनों को भी समझना चाहिए। जब वे अपने-आपकों या संतों को संबोधित करके बोलते हैं तब वे अपना मत प्रकट करते जान पड़ते हैं। वे अपने मत के मानने वाले को ही 'संत' या साधु कहते हैं। साधारणत: वे 'भाई' संबोधन के द्वारा साधारण जनता से बात करते हैं और जब कभी वे 'जोगिया' को पुकार उठते हैं तो स्पष्ट जी जान पड़ता है कि इस भले आदमी के संबंध में उनकी धारणा कुछ बहुत अच्छी नहीं थी। यह दावा किया गया है कि गुरु-परपरा की जानकारी रखने वाले लोग कबीरदास के आत्म-संबोधन में एक निश्चित संकेत की बात बताया करते हैं।

अवधू और अवधूत

भारतीय साहित्य में यह 'अवधू' शब्द कई संप्रदायों के सिद्ध आचर्यों के अर्थ में व्यवहुत हुआ है। साधारणत: जागातिक द्वंद्वों से अतीत, मानापमान-विवर्जित, पहुँचे हुए योगी को अवधूत कहा जाता है। यह शब्द मुख्यतया तांत्रिकों, सहजयानियों और योगियों का है। सहजयान और वज्रयान नामक बौद्ध तांत्रिक मतों में 'अवधूती वृत्ति' नामक एक विशेष प्रकार की यौगिक वृत्ति का उल्लेख मिलता है। आठवीं शताब्दी के बाद से नालंदा, विक्रमशिला, ओदंतपुरी आदि विद्यायतनों में जो बौद्ध धर्म प्रचलित हुआ वह एक नवीन ढंग का तांत्रिक और योगक्रियामूलक धर्म था। इस नवीन तांत्रिक मत में तीन प्रधान मतों का संधान पाया जाता है-सहजयान, वज्रयान और कालचक्रयान। इन मतों की अधिकांश पुस्तकें आज तिब्बती अनुवाद के रूप में ही सुरक्षित हैं। स्व. हरप्रसाद शास्त्री ने 'चर्याचयीविनिश्चय', 'दोहाकोष', 'अद्वयवज्रसंग्रह' और 'गुह्य-समाजतंत्र' आदि पुस्तकें प्रकाशित की हैं। सहजयान और वज्रयान में बहुत कुछ समानता है। शास्त्री जी ने जो चर्यापद प्रकाशित कराए हैं उनमें आर्यदेव, भूसुक, कान्ह, सरह, लुई आदि आचार्यों के पद हैं, जिन्हें तिब्बती साहित्य में सिद्धाचार्य कहा गया है। ये आचार्यगण सहजवस्था की बात करते हैं। सहजावस्था को प्राप्त करने पर ही साधक अवधूत होता है।

तंत्र-ग्रंथों में चार प्रकार के अवधूतों की चर्चा है-ब्रह्मावधूत, शैवावधूत, भक्तावधूत और हंसावधूत। हंसावधूतों में जो पूर्ण होते हैं वे परमहंस और जो अपूर्ण होते हैं वे परिव्राजक कहलाते हैं ('प्राण्तोषिणी')। परंतु कबीरदास ने न

तो इतने तरह के अवधूतों की कहीं कोई चर्चा ही की है और न ऊपर श्निर्वाण-तंत्र' के बताए हुए अवधूत से उनके अवधूत की कोई समता ही दिखाई है। श्हंसा' की बात कबीरदास कहते जरूर हैं पर वे हंस और अवधूत को शायद ही कहीं एक समझते हों। वे बराबर हंस या पक्षी शुद्ध और मुक्त जीवात्मा को ही कहते हैं। इसी भाव को बताने के लिए भर्तृहरि ने कहा है कि इस अवधूत मुनि की बाह्य क्रियाएँ प्रशमित हो गई हैं। वह न दु:ख समझता है, न सुख को सुख। वह कहीं भूमि पर सो सकता है कहीं पलंग पर, कहीं कंथा धारण कर लेता है कहीं दिव्य वसन, कहीं मधुर भोजन पाने पर उसे भी पा लेता है। श्किंतु कबीरदास इस प्रकार योग में भोग को पंसद नहीं करते। यद्यपि इन योगियों के संप्रदाय के सिद्धों को ही कबीरद अवधूत कहते हैं तथापि वे साधारण योगी अवधूत के फर्क को बराबर याद रखते हैं। साधारण योगी के प्रति उनके मन में वैसा आदर का भाव नहीं है जैसा अवधूत के बारे में है। कभी-कभी उन्होंने स्पष्ट भाषा में योगी को और अवधूत को भिन्न रूप से याद किया है। इस प्रकार कबीरदास का अवधूत नाथपंथी सिद्ध योगी है।

प्रसिद्ध है कि एक बार काशी के पंडितों में द्वैत और अद्वैत तत्त्व का शास्त्रर्थ बहुत दिनों तक चलता रहा। जब किसी शिष्य ने कबीर साहब का मत पूछा तो उन्होंने जवाब में शिष्य से ही कई प्रश्न किए। शिष्य ने जो उत्तर दिया उसका सार-मर्म यह था कि विद्यमान पंडितों में इस विषय में कोई मतभेद नहीं है कि भगवान, रूप, रस, गंध एवं स्पर्श से परे हैं, गुणों और क्रियाओं के अतीत हैं, वाक्य और मन के अगोचर हैं। कबीरदास ने हसँकर जवाब दिया कि भला उन लड़ने वाले पंडितों से पूछो कि भगवान रूप से निकल गया, रस से निकल गया, रस से अतीत हो गया, गुणों के ऊपर उठ गया, क्रियाओं की पहुँच के बाहर हो रहा, वह अंत में आकर संख्या में अटक जाएगा? जो सबसे परे है वह क्या संख्या के परे नहीं हो सकता? यह कबीर का द्वैताद्वैत-विलक्षण समतत्त्ववाद है।

निरंजन कौन है?

मध्ययुग के योग, मंत्र और भक्ति के साहित्य में 'निरंजन' शब्द का बारम्बार उल्लेख मिलता है। नाथपंथ में भी 'निरंजन' शब्द खूब परिचित है। साधारण रूप में 'निरंजन' शब्द निर्गुण ब्रह्म का और विशेष रूप से शिव का वाचक है। नाथपंथ की भाँति एक और प्राचीन पंथ भी था, जो निरंजन पद को परमपद मानता था। जिस प्रकार नाथपंथी नाथ को परमाराध्य मानते थे, उसी

प्रकार ये लोग 'निरंजन' को। आजकल निरंजनी साधुओं का एक सम्प्रदाय राजपूताने में वर्तमान है। कहते हैं, इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक स्वामी निरानंद निरंजन भगवान (निर्गुण) के उपासक थे।

बंगाल के पश्चिमी हिस्सों तथा बिहार के पूर्वी जिलों में आज भी एक धर्ममत है, जिसके देवता निरंजन या धर्मराज हैं। एक समय यह सम्प्रदाय झारखण्ड और रीवाँ तक प्रचलित था। बाद में चलकर यह मत कबीर सम्प्रदाय में अंतर्भुक्त हो गया और उसकी सारी पौराणिक कथाएँ कबीर मत में गृहीत हो गई, परन्तु उनका स्वर बदल गया। नाथपंथ में निरंजन की महिमा खूब गाई गई है। हठयोगी जब नादानुसंधान का सफल अभ्यासी हो जाता है तो उसके समस्त पाप क्षीण हो जाते हैं, उसके चित्त और मारुत निरंजन में लीन हो जाते हैं। यह योगी का परम साध्य है, क्योंकि जब तक ज्ञान निरंजन के साक्षात्कार तक नहीं उठता तभी तक इस संसार के विविध जीवों और नाना पदार्थों में भेद-दृष्टि बनी हुई है।

कबीर के दोहे

यहाँ कबीरदास के कुछ दोहे दिये गये हैं।

(1) साधू भूखा भाव का, धन का भूखा नाहिं।
धन का भूखा जी फिरै, सो तो साधू नाहिं ।।

व्याख्या– कबीर दास जी कहते हैं कि संतजन तो भाव के भूखे होते हैं, और धन का लोभ उनको नहीं होता। जो धन का भूखा बनकर घूमता है वह तो साधू हो ही नहीं सकता।

(2) जैसा भोजन खाइये, तैसा ही मन होय।
जैसा पानी पीजिये, तैसी वाणी होय।।

व्याख्या– संत शिरोमणि कबीरदास कहते हैं कि जैसा भोजन करोगे, वैसा ही मन का निर्माण होगा और जैसा जल पियोगे वैसी ही वाणी होगी अर्थात् शुद्ध-सात्विक आहार तथा पवित्र जल से मन और वाणी पवित्र होते हैं इसी प्रकार जो जैसी संगति करता है वैसा ही बन जाता है।

10

कबीर के दोहे

कस्तूरी कुन्डल बसे, मृग ढूढै बन माहि।
ऐसे घट-घट राम हैं, दुनिया देखे नाहि।।

कामी, क्रोधी, लालची, इनसे भक्ति न होय।
भक्ति करे कोई सूरमा, जाति वरन् कुल खोय।।

काल करै सो आज कर, आज करै सो अब।
पल में प्रलय होयगी, बहुरि करेगौ कब।।

कामी लज्जा ना करै, न माहें अहिलाद।
नींद न माँगै साँथरा, भूख न माँगे स्वाद।।

कांकर पाथर जोरि कै मस्जिद लई बनाय।
ता चढि मुल्ला बांग दे क्या बहरा हुआ खुदाय।।

करता था सो क्यों किया, अब करि क्यों पछताय।
बोवे पेड बबूल का, आम कहां से खाय।।

काल करे सो आज कर, आज करे सो अब।
पल में प्रलय होएगी, बहुरि करेगा कब।।

कर बहियां बल आपनी, छोड़ बीरानी आस।
जाके आँगन नदि बहे, सो कस मरत प्यास।।

कथनी कथी तो क्या भया जो करनी ना ठहराइ।
कालबूत के कोट ज्यूं देखत ही ढहि जाइ।।

कबिरा गरब न कीजिये, कबहूं न हंसिये कोय।
अबहूं नाव समुंद्र में, का जाने का होय।।

कबीरा गर्व ना किजीये, उंचा देख आवास।
काल परौ भुइं लेटना, उपर जमसी घास।।

कबीरा खड़ा बजार में, सब की चाहे खैर।
ना काहू से दोस्ती, ना काहू से बैर।।

कबीरा सोई पीर हैं, जो जाने पर पीर।
जो पर पीर न जानई, सो काफिर बेपीर।।

कबीरा ते नर अँध है, गुरु को कहते और।
हरि रूठे गुरु ठौर है, गुरु रूठे नहीं ठौर।।

कबीरा सोया क्या करे, उठि न भजे भगवान।
जम जब घर ले जायेंगे, पड़ी रहेगी म्यान।।

कबीर सुता क्या करे, करे काज निवार।
जिस पंथ तू चलना, तो पंथ संवार।।

कबीर माला काठ की, कहि समझावै तोहि।
मन न फिरावै आपणा, कहा फिरावै मोहि।।

कबीर तूं काहै डरै, सिर पर हरि का हाथ।
हस्ती चढि नहि डोलिये, कुकर भूखे साथ।।

कबीर घोड़ा प्रेम का, चेतनि चढ़ि असवार।
ग्यान षड्ग गहि, काल सिरि, भली मचाई मार।।

कबीर रेख स्यंदूर की, काजल दिया न जाइ।
नैनूं रमैया रमि रह्या, दूजा कहाँ समाइ।।

कबीर नवै सब आपको, पर को नवै न कोय।
घालि तराजू तौलिये, नवै सो भारी होय।।

सूरा के मैदान में, कायर का क्या काम।
कायर भागे पीठ दे, सूरा करे संग्राम।।

सतनाम जाने बिना, हंस लोक नहिं जाए।
ज्ञानी पंडित सूरमा, कर कर मुये उपाय।।

सुख में सुमिरन ना किया, दुःख में करते याद।
कह कबीर ता दास की, कौन सुने फरियाद।।

साई इतना दीजिए जामें कुटुंब समाय।
मैं भी भूखा ना रहूं साधु न भूखा जाय।।

सुमिरन करहु राम का, काल गहै है केस।
न जानो कब मारिहै, का घर का परदेस।।

सांच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हिरदय सांच हें, वाके हिरदय आप।।

सहज सहज सब कोऊ कहै, सहज न चीन्है कोइ।
जिन्ह सहजैं विषया तजी, सहज कहीजै सोइ।

सुखिया सब संसार है खावै और सोवै।
दुखिया दास कबीर है जागै अरू रोवै।।

सात समंदर की मसि करौं लेखनि सब बनराइ।
धरती सब कागद करौं हरि गुण लिखा न जाइ।।

सतगुरु मिला जु जानिये, ज्ञान उजाला होय।
भ्रम का भांड तोड़ि करि, रहै निराला होय।।

साधु ऐसा चाहिए जैसा सूप सुभाय।
सार-सार को गहि रहै थोथा देई उडाय।।

साधू गाँठ न बाँधई उदर समाता लेय।
आगे पाछे हरी खड़े जब माँगे तब देय।।

शीलवन्त सबसे बड़ा, सब रतनन की खान।
तीन लोक की सम्पदा, रही शील में आन।।

जो तोको कांटा बुवै, ताहि बोओ तू फूल।
ताहि फूल को फूल हैं, वाको हैं तिरसूल।।

जो जल बाढ़े नांव में, घर में बाढ़े दाम।
दोऊ हाथ उलीचिये, यही सयानो काम।।

जो गुरु ते भ्रम न मिटे, भ्रान्ति न जिसका जाय।
सो गुरु झूठा जानिये, त्यागत देर न लाय।।
जिन खोजा तिन पाइयां, गहरे पानी पैठ।
मैं बौरी बन डरी, रही किनारे बैठ।।

जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान।।

जग में बैरी कोई नहीं, जो मन शीतल होय।
यह आपा तो ड़ाल दे, दया करे सब कोय।।

जहाँ काम तहाँ नाम नहिं, जहाँ नाम नहिं वहाँ काम।
दोनों कबहूँ नहिं मिले, रवि रजनी इक धाम।।

जहां दया तहं धर्म है, जहां लोभ तहं पाप।
जहां क्रोध तहं काल है, जहां क्षमा आप।।

जैसे तिल में तेल है, ज्यों चकमक में आग।
तेरा साईं तुझ में है, तू जाग सके तो जाग।।

जब में था हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहिं।
सब अंधियारा मिटी गया, जब दीपक देख्या माहिं।।

जब तूं आया जगत् में, लोग हसें तू रोए।
एसी करनी ना करी, पाछे हसें सब कोए।।

जीवत समझे जीवत बुझे, जीवत ही करो आस।
जीवत करम की फाँस न काटी, मुए मुक्ति की आस।।

जेहि खोजत ब्रह्मा थके, सुर नर मुनि अरु देव।
कहै कबीर सुन साधवा, करु सतगुरु की सेव।।

ज्यों नैनों में पुतली, त्यों मालिक घट माहिं।
मूरख लोग ना जानहीं, बाहिर ढूंढ़न जाहिं ।।

पोथी पढ़ पढ़ जग मुआ, पंड़ित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंड़ित होय।।

प्रेम न बाड़ी ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहि रूचौ, सीस देइ ले जाय।।

पतिबरता मैली भली, गले काँच को पोत।
सब सखियन में यों दिपै, ज्यों रवि ससि की जोत।।

पूरब दिसा हरि को बासा, पश्चिम अलह मुकामा।
दिल महं खोजु, दिलहि में खोजो यही करीमा रामा।।

पाँच पहर धन्धे गया, तीन पहर गया सोय।
एक पहर हरि नाम बिन, मुक्ति कैसे होय।।

पहले अगन बिरहा की, पाछे प्रेम की प्यास।
कहे कबीर तब जानिए, नाम मिलन की आस।।

पाहन पूजै हरि मिले, तो मैं पूजूं पहार।
ताते यह चाकी भली, पीस खाए संसार।।

परनारी का राचणौ, जिसकी लहसण की खानि।
खूणैं बेसिर खाइय, परगट होइ दिवानि।।

परनारी राता फिरैं, चोरी बिढ़िता खाहिं।
दिवस चारि सरसा रहै, अति समूला जाहिं।।

पूरा सतगुरु न मिला, सुनी अधूरी सीख।
स्वाँग यती का पहिनि के, घर घर माँगी भीख।।

चलती चक्की देखि कै, दिया कबीरा रोय।
दुइ पट भीतर आइ कै, साबित गया न कोय।।

चारिउं वेदि पठाहि, हरि सूं न लाया हेत।
बालि कबीरा ले गया, पंडित ढूंढे खेत।।

चाह गई चिंता मिटी, मनुआ बेपरवाह।
जिसको कुछ नहीं चाहिए वह शहनशाह।।

माली आवत देख कै कलियन करी पुकार।
फूली फूली चुन लिए, काल्हि हमारी बार।।

माला फेरत जुग भया, फिरा न मन का फेर।
कर का मन का डार दे, मन का मनका फेर।।

माया मरी न मन मरा, मर-मर गए शरीर।
आशा तृष्णा न मरी, कह गए दास कबीर।।

माया दीपक नर पतंग, भ्रमि भ्रमि ईवै पडंत।
कहै कबीर गुरु ज्ञान ते, एक आध उबरंत।।

मन माया तो एक हैं, माया नहीं समाय।
तीन लोक संसय परा, काहि कहूं समझाय।।

माटी कहे कुम्हार से, तु क्या रौंदे मोय।
एक दिन ऐसा आएगा, मैं रौंदूगी तोय।।

मूरख संग ना कीजिए, लोहा जल ना तिराइ।
कदली, सीप, भुजंग-मुख, एक बूंद तिहँ भाइ।।

माँगण मरण समान है, बिरता बंचौ कोई।
कहै कबीर रघुनाथ सूं, मति रे मंगावे मोहि।।

मुंड मुंडावत दिन गए, अजहूँ न मिलिया राम।
राम नाम कहू क्या करे, जे मन के औरे काम।।

मूल ध्यान गुरु रूप है, मूल पूजा गुरु पाँव।
मूल नाम गुरु वचन है, मूल सत्य सतभाव।।

एक राम दशरथ का प्यारा, एक राम का सकल पसारा।
एक राम घट घट में छा रहा, एक राम दुनिया से न्यारा।।

एकै साध सब सधै, सब साधे सब जाय।
जो तू सींचे मूल को, फूले फल अघाय।।

ऐसी बानी बोलिए, मन का आपा खोइ।
आपन को सीतल करे, और हु सीतल होइ।।

एक कहूँ तो है नहीं, दो कहूँ तो गारी।
है जैसा तैसा रहे, कहे कबीर बिचारी।।

धरती सब कागद करूं, लेखनी सब बनराय।
साह सुमुंद्र की मसि करूं, गुरु गुण लिखा न जाय।।

धीरे-धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय।
माली सींचे सौ घड़ा, तु आए फल होय।।

रज गुन ब्रह्मा तम गुन संकर सत्त गुन हरि सोई।
कहै कबीर राम रमि रहिये हिन्दू तुरक न कोई।।

रात गंवाई सोय के, दिवस गंवाया खाय।
हीरा जन्म अमोल था, कोड़ी बदले जाय।।

लाली मेरे लाल की जित देखों तित लाल।
लाली देखन मैं चली, हो गई लाल गुलाल।।

लूट सके तो लूट ले, राम नाम की लूट।
पाछे फिरे पछताओगे, प्राण जाहिं जब छूट।।

ऊंचे कुल का जनमिया, जे करणी ऊंच होइ।
सुबण कलस सुरा भरा, साधू निन्दै सोइ।।

उठा बगुला प्रेम का तिनका चढ़ा अकास।
तिनका तिनके से मिला तिन का तिन के पास।।

गुरु गोबिंद दोऊ खड़े, का के लागूं पाय।
बलिहारी गुरु आपनै, गोबिंद दियो मिलाय।।

गुरु कीजिए जानि के, पानी पीजै छानि।
बिना विचारे गुरु करे, परे चौरासी खानिघ

गुरु किया है देह का, सतगुरु चीन्हा नाहिं।
भवसागर के जाल में, फिर फिर गोता खाहि।।

गुरु लोभ शिष लालची, दोनों खेले दाँव।
दोनों बूड़े बापुरे, चढ़ि पाथर की नाँव।।

गाँठि न थामहिं बाँध ही, नहिं नारी सो नेह।
कह कबीर वा साधु की, हम चरनन की खेह।।

हीरा पड़ा बाजार में, रहा छार लपटाय।
बहुतक मूरख चलि गए, पारख लिया उठाय।।

तिनका कबहुँ ना निंदये, जो पाँव तले होय।
कबहुँ उड़ आँखो पड़े, पीर घानेरी होय।।

बुरा जो देखन मैं चल्या, बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजा आपना, मुझसा बुरा न कोय ।।

बडा हुआ तो क्या हुआ जैसे पेड़ खजूर।
पंथी को छाया नहीं फल लागे अति दूर ।।

बोली एक अनमोल है, जो कोइ बोलै जानि।
हिये तराजू तौल के, तब मुख बाहर आनि।।

दोष पराए देख कर चल्या हंसत हंसत।
अपनै चीति न आबई जाको आदि न अंत।।

दर्शन करना है तो, दर्पण माँजत रहिये।
दर्पण में लगी कई, तो दर्श कहाँ से पाई।।

दु:ख में सुमिरन सब करे सुख में करै न कोय।
जो सुख में सुमिरन करे दु:ख काहे को होय ।।

नये धोये क्या हुआ, जो मन मैल न जाय।
मीन सदा जल में रहै, धोये बास न जाय।।

निंदक नियरे राखिए, आँगन कुटी छवाय।
बिन पानी, साबुन बिना, निर्मल करे सुभाय।।

आय हैं सो जाएँगे, राजा रंक फकीर।
एक सिंहासन चढ़ि चले, एक बँधे जात जंजीर।।

अकथ कहानी प्रेम की, कुछ कही न जाये।
गूंगे केरी सर्करा, बैठे मुस्काए।।

अति का भला न बोलना, अति की भली न चूप।
अति का भला न बरसना, अति की भली न धूप।।

यह तन विषय की बेलरी, गुरु अमृत की खान।
सीस दिये जो गुरु मिलै, तो भी सस्ता जान।।

11

कबीर कालीन राजनैतिक परिस्थितियाँ

कबीर का काल संक्राति का काल था। तत्कालीन राजनीतिक वातावरण पूर्ण रुप से विषाक्त हो चुका था। इस समय की राजनीतिक व्यवस्था को बहुत अंश तक मुल्ला और पुजारी प्रेरित करते थे। हिंदू-मुसलमानों के भीतर भी निरंतर ईर्ष्या और द्वेष का बोलबाला था। तत्कालीन समृद्ध धर्मो बौद्ध, जैन, शैव एवं वैष्णवों के अंदर विभिन्न प्रकार की शाखाएँ निकल रही थी। सभी धर्मों के ठेकेदार आपस में लड़ने एवं झगड़ने में व्यस्त थे।

लोदी वंश का सर्वाधिक यशस्वी सुल्तान, सिकंदर शाह सन् 1489 ई. में गद्दी पर बैठा। सिकंदर को घरेलू परिस्थिति एवं कट्टर मुसलमानों का कड़ा विरोध सहना पड़ा। दुहरे विरोध के कारण वह अत्यंत असहिष्णु हो उठा था। सिकंदर शाह के तत्कालीन समाज में आंतरिक संघर्षों एवं विविध धार्मिक मतभेदों के कारण, भारतीय संस्कृति की केंद्रीय दृष्टि समाप्त प्राय हो गयी थी। इसी जनशोषित समाज में लौह पुरुष महात्मा कबीर का जन्म हुआ। शक्तिशाली लोगों ने ऐसे-ऐसे कानून बना लिए थे, जो कानून से बड़ा था और इसके द्वारा वह लोगों का शोषण किया करते थे। धर्म की आड़ में ये शोषक वर्ग अपनी चालाकी को देवी विधान से जोड़ देता था। तत्कालीन शासन-तंत्र और धर्म-तंत्र को देखते हुए, महात्मा कबीर ने जो कहा, इससे उसकी बगावत झलकती है।

दर की बात कहो दरवेसा बादशाह है कौन भेसा
कहाँ कूच कर हि मुकाया, मैं तोहि पूछा मुसलमाना
लाल जर्द का ताना-बाना कौन सुरत का करहु सलामा।

नियमानुसार शासनतंत्र के कुछ वैधानिक नियम होते हैं, जिनके तहत सरकारी कार्यों को संपादित किया जाता है, लेकिन कबीर के काल में ऐसा कोई नियम नहीं था, इसी लिए वे कहते हैं 'बादशाह तुम्हारा वेश क्या है ? और तुम्हारा मूल्य क्या है ? तुम्हारी गति कहाँ है ? किस सूरत को तुम सलाम करते हो ? इस प्रकार राजनीतिक अराजकता तथा घोर अन्याय देखकर उनका हृदय वेदना से द्रवित हो उठता है। धार्मिक कट्टरता के अंतर्गत मनमाने रुप से शासन तंत्र चल रहा था, जिसमें साधारण जनता का शोषण बुरी तरह हो रहा था। कबीर के लिए यह स्थिति असहनीय हो रही थी।'

काजी काज करहु तुम कैसा, घर-घर जब हकरा बहु बैठा।
बकरी मुरगी किंह फरमाया, किसके कहे तुम छुरी चलाया।

कबीर पूछते हैं काजी तुम्हारा क्या नाम है ? तुम घर पर जबह करते हो ? किसके हुक्म से तुम छुरी चलाते हो ?

दर्द न जानहु, पीर कहावहु, पोथा पढ़ी-पढ़ी जग भरमाबहु

काजी तुम पीर कहलाती हो, लेकिन दूसरों का दर्द नहीं समझते हो। गलत बातें पढ़-पढ़ कर और सुनाकर तुम समाज के लोगों को भ्रम में डालते हो।

उपर्युक्त बातों से यह सिद्ध होता है कि तत्कालीन समाज में धर्म की आड़ में सब तरह के अन्याय और अनुचित कार्य हो रहे थे। निरीह जनता के पास इस शोषण के खिलाफ आवाज उठाने की शक्ति नहीं थी। कबीर इस चालाक लोक वेद समर्पित देवी विधान के खिलाफ आवाज उठायी।

दिन को रोजा रहत है, राज हनत हो गया,
मेहि खून, वह वंदगी, क्योंकर खुशी खुदाय।

दिन में रोजा का व्रत रखते हो और रात में गाय की हत्या करते हो ? एक ओर खून जैसा पाप और दूसरी ओर इश बंदगी। इससे भगवान कभी भी प्रसन्न नहीं हो सकते। इस प्रकार एक गरीब कामगार कबीर ने शोषक वर्ग के शिक्षितों साधन संपन्नों के खिलाफ एक जंग को बिगुल बजाया।

इक दिन ऐसा होइगा, सब लोग परै बिछोई।
राजा रानी छत्रपति, सावधान किन होई।।

कबीर के कथनानुसार परिवर्तन सृष्टि का नियम है। राजा हमेशा बदलता रहता है। एक की तूती हमेशा नहीं बोलती है। मरण को स्वीकार करना ही पड़ता है, अतः राजभोग प्राप्त करके गर्व नहीं करना चाहिए, अत्याचार नहीं करना चाहिए। यह बात सर्वमान्य है कि एक दिन सब राज-, पाठ छोड़कर यहाँ से प्रस्थान करना ही होगा।

आए हैं सो जाएँगे, राजा रंक फकीर।
एक सिंहासन चढि चले, एक बधें जंजीर॥

कबीर साहब मृत्यु के सम्मुख राजा, रंक और फकीर में कुछ भेदभाव नहीं मानते हैं। उनके अनुसार सभी को एक दिन मरना होगा।

कहा हमार गढि दृढ़ बांधों, निसिवासर हहियो होशियार
ये कलि गुरु बड़े परपंची, डोरि ठगोरी सब जगमार।

कबीर चाहते थे कि सभी व्यक्ति सत्य का साक्षात्कार अपनी आँखों से करे। धर्म के नाम पर मनुष्य और मनुष्य के बीच गहरी खाई खोदने वालों से कबीर साहब को सख्त नफरत होती थी। उन्होंने ऐसे तत्त्वों को बड़ी निर्भयता से अस्वीकार कर दिया था।

ऐसा लोग न देखा भाई, भुला फिरै लिए गुफलाई।
महादेव को पंथ चलावै ऐसे बड़ै महंत कहावै।
हाट बजाए लावे तारी, कच्चे सिद्ध न माया प्यारी।

महात्मा कबीर हैरान होकर लोगों से कहा करते थे, भाई यह कैसा योग है। महादेव के नाम परपंथ चलाया जाता है। लोग बड़े-बड़े महंत बनते हैं। हाटे बजारे समाधि लगाते हैं और मौका मिलते ही लोगों को लूटने का प्रयास करते हैं। ऐसे पाखंडी लोगों का वे पर्दाफाश करते हैं।

भये निखत लोभ मन ढाना, सोना पहिरि लजावे बाना।
चोरा-चोरी कींह बटोरा, गाँव पाय जस चलै चकोरा।

लोगों को गलत बातें ठीक लगती थी और अच्छी बातें विष। सत्य की आवाज उठाने का साहस किसी के पास न रह गया था।

नीम कीट जस नीम प्यारा
विष को अमृत कहत गवारा।

वे कहते हैं, सत्य से बढकर कोई दूसरा तप नहीं है और झूठ से बढ़कर कोई पाप नहीं है। जिनका हृदय शुद्ध है, वहाँ ईश का निवास है।

सत बराबर तप नहीं, झूठ बराबर नहीं पाप,
ताके हृदय साँच हैं, जाके हृदय आप।

राजाओं की गलत और दोषपूर्ण नीति के कारण देश जर्जर हो गया और प्रजा असह्य कष्ट उठाने को बेबश थी। राज नेता धर्म की आड़ में अत्याचार करते थे। कबीर की दृष्टि में तत्कालीन शासक यमराज से कम नहीं थे।

राजा देश बड़ौ परपंची, रैयत रहत उजारी,
इतते उत, उतते इत रहु, यम की सौढ़ सवारी,
घर के खसम बधिक वे राजा,
परजा क्या छोंकौ, विचारा।

कबीर के समय में ही शासको की नादानी के चलते, राजधानी को दिल्ली से दौलताबाद और पुनः दौलताबाद से दिल्ली बदलने के कारण अपार धन और जन को हानि हुई थी तथा प्रजा तबाह हो गई थी।

महात्मा कबीर साहब ने इस जर्जर स्थिति एवं विषम परिस्थिति से जनता को उबारने के लिए एक प्रकार जेहाद छेड़ दिया था। एक क्रांतिकारी नेता के रुप में कबीर समाज के स्तर पर अपनी आवाज को बुलंद करने लगे। काजी, मुल्लाओं एवं पुजारियों के साथ-साथ शासकों को धिक्कारते और अपना विरोध प्रकट किया, जिसके फलस्वरुप कबीर को राजद्रोह करने का आरोप लगाकर तरह-तरह से प्रताड़ित किया गया।

''एकै जनी जन संसार'' कहकर कबीर ने मानव मात्र में एकता का संचार किया तथा एक ऐसी समझदारी पैदा करने की चेष्टा की, कि लोग अपने उत्स को पहचान कर वैमन्षय की पीड़ा से मुक्ति पा सकें और मनुष्य को मनुष्य के रुप में प्रेम कर सकें।

आधुनिक राजनीतिक परिस्थितियों को देखकर ऐसा लगता है कि आग कबीर साहब होते, तो उनको निर्भीक रुप से राजनैतिक दलों एवं व्यक्तियों से तगड़ा विरोध रहता, क्योंकि आग की परिस्थिति अपेक्षाकृत अधिक नाजुक है। आज कबीर साहब तो नहीं है, मगर उनका साहित्य अवश्य है, आज की राजनैतिक स्थिति में अपेक्षाकृत सुधार लाने के लिए कबीर साहित्य से बढ़कर और कोई दूसरा साधन नहीं है। कबीर साहित्य का आधार नीति और सत्य है और इसी आधार पर निर्मित राजसत्ता से राष्ट्र की प्रगति और जनता की खुशहाली संभव है। उनका साहित्य सांप्रदायिक सहिष्णुता के भाव से इतना परिपूर्ण है कि

वह हमारे लिए आज भी पथ प्रदर्शन का आकाश दीप बना हुआ है। आज कबीर साहित्य को जन-जन तक प्रसार एवं प्रचार करने की आवश्यकता है, ताकि सभी लोग इसको जान सकें और स्वयं को शोषण से मुक्ति एवं समाज में सहिष्णुता बना सकें।

तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति

कबीर मध्यकाल के क्रांतिपुरुष थे, जिन्होंने तत्कालीन समाज में हलचल पैदा करती थी। जर्जर हो चले समाज में कबीर का कार्य एक ऐसे चतुर एवं कुशल सर्जन का काम था, जिसके सामने समाज के हृदय के ऑपरेशन का प्रश्न था। उस आपरेशन के लिए कबीर साहब ने पूरी तैयार की थी।

उस समय पूरे देश में एक उद्धम लू चल रही थी, जिसका दाह भयंकर एवं व्यापक था। उस दाह से सारी जनता, अमीर, गरीब सब पीड़ित थे। कड़ी मेहनत करने के बावजूद साधारण जनता का जीवन असुरक्षित था और वे नृशंसता का शिकार बन रहे थे। विभिन्न प्रकार के करों ने सामाजिक एकता को विशुद्ध करके रख दिया था। महात्मा कबीर साहब भी इसी पीड़ित समाज के एक अंग थे। पीड़ा ने उन्हें सचेत किया था और दलितों की कराहों ने उन्हें बल दिया था। उनकी भत्सनाओं में समाज का क्षोभ था।

चलती चक्की देख के कबीर दिया रोय।
दो पाटन के बीच में साबूत बचा न कोय॥

जैसे चक्की के भीतर चना टूट जाता है, उसी तरह सांसारिक चक्र में घिसते-टूटते जनता के दुख-दर्द को देख कर कबीर को काफी दुख होता था। एक पद –

जी तू वामन वामनी जाया,
तो आन बाट हे काहे न आया,
जे तू तुरक तुरकनी जाया,
तो भीतरी खतरा क्यूँ न कराया।

तत्कालीन समाज में व्याप्त जाति का स्पष्टीकरण उपरोक्त पद से अच्छी तरह हो जाता है। एक स्थान पर उन्होंने इस पर भीषण प्रहार किया है।

सो ब्राह्मण जो कहे ब्रहमगियान,
काजी से जाने रहमान

कहा कबीर कछु आन न कीजै,
राम नाम जपि लाहा लीजै।

उनके कथानुरुप वैश्य जाति होने का तात्पर्य यह नहीं है कि इसका स्थान समाज में बहुत ऊँचा है। असल चरित्र ज्ञान है, विवेक है, जिससे मनुष्य की पहचान बनती है। आडंबरपूर्ण व्यवहार से छपा तिलक लगाकर लोगों को ठगने से मूर्ख बनाने से अपना अहित होता है।

12

कबीर ग्रंथावली

कबीर निर्गुण सन्त काव्यधारा के ऐसे शब्द-साधक हैं, जिन्होंने अपने युग की धार्मिक, सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था से टकराकर अद्‌भुत शक्ति प्राप्त की। पारम्परिक सांस्कृतिक प्रवाह में सम्मिलित प्रदूषित तत्त्वों को छानकर उसे मध्यकाल के लिए ही आस्वादनीय नहीं, बल्कि आधुनिक जनमानस के लिए भी उपयोगी बना दिया। भारतीय धर्म साधना में निडर तथा अकुंठित व्यक्तित्त्व विरले है। पंडितों, मौलवियों, योगियों आदि से लोहा लेकर कबीर ने जन साधारण के स्वानुभूतिजन्य विचारों और भावों की मूल्यवत्ता स्थापित की। कबीर की वाणी संत-कंठ से निसृत होकर साधकों, अनुयायियों एवं लोक जीवन में स्थान एवं रुचि भेद के अनुसार विविध रूपों में परिणित हो गयी। इसलिए कबीर की वाणी के प्रामाणिक पाठ निर्धारण की जटिल समस्या खड़ी हो गयी। कबीर पंथ में बीजक की श्रेष्ठता मान्य है, विद्वानों ने ग्रंथावलियों को महत्त्व दिया है। सामान्य जन के लिए लोक में व्याप्त कबीर वाणी ग्रंथावली है।

ग्रंथावली का संपादन

अत: तीनों परम्परओं में से किसी को भी त्यागना उचित नहीं है। फलत: कबीर की रचनाओं का समग्र रूप तीनों के समाहार से ही संभव है। प्रस्तुत ग्रंथावली का संपादन इसी दृष्टि से किया गया है। इसमें अपनी इच्छित दिशा में आवश्यकता से अधिक खींचकर पाठकीय सोच को कुंठित करने की चेष्टा नहीं की गयी है। कबीर-वाणी के प्रामाणिक एवं समग्र पाठ से तथा उसमें निहित विचारों, भावों एवं समग्र पाठ की दृष्टि से तथा उनमें निहित विचारों, भावों एवं

अनुभूतियों को उद्‌घाटित करने की दृष्टि से यह कृति निश्चित ही उपादेय सिद्ध होगी।

रामकिशोर शर्मा का कथन

जो व्यक्ति काल के विरुद्ध खड़ा होता है उसे चतुर्दिक से आघात सहने पड़ते हैं, सम्पूर्ण अस्तित्त्व को मिटा देने वाले आघातों से जब वह अक्षत शेष रह जाता है तो जनमानस इस अनुमान से उसकी ओर दौड़ पड़ता है कि उसमें कुछ असाधारण अवश्य है। उसके विषय में तरह-तरह की किंवदन्ती बनने लगती हैं। निरन्तर वह असाधारण होता जाता है, यहाँ तक कि उसे ईश्वरीय अवतार भी मान लिया जाता है। कबीर कुछ इसी तरह के व्यक्ति हैं, जो गौतम बुद्ध, महावीर आदि की तरह राजघराने की शक्ति सम्पन्नता तथा वैभव की पृष्ठभूमि नहीं रखते थे, एक नितान्त उपेक्षित तिरस्कृत परिवार की पृष्ठभूमि से उठकर धार्मिक व्यवस्था, सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध अपनी जान को जोखिम में डालकर खड़े हो गए। उन्होंने जो कुछ किया ईश्वर के आदेश से ही किया। उनकी साधना, आत्मा, परमात्मा एवं जीवन की विविध अनुभूतियाँ कवित्वमय वाणी में जब उद्‌घोषित होने लगीं तो उनके सम्पर्क में रहने वाले संतों, श्रद्धालु, शिष्यों तथा जनता ने उन्हें उपयोगी समझकर अपने मस्तिष्क में अंकित कर लिया, कुछ ने उन्हें आगे पीछे लिपि बद्ध भी किया। जैसे पहाड़ी घाटी में तेज आवाज से चिल्लाने पर कुछ देर तक वाणी की प्रतिध्वनि गूँजती रहती है, उसी तरह महान् रचनाकार की वाणी जनता के हृदय-गुहा में ध्वनित, प्रतिध्वनित होती है, यह सिलसिला शताब्दियों तक चलता रहता है। बड़ा रचनाकार सिर्फ रचना नहीं बल्कि रचनात्मक क्षमता को उत्तेजित भी करता है। उसके पाठक और श्रोता उसकी रचना में अपनी रचना को भी मिलाने का प्रयत्न करते हैं या बड़े रचनाकार को प्रमाण (आप्त) मानकर अपनी रचना को उसके नाम की मुहर से प्रचारित, प्रसारित करने का दुस्साहस भी करते हैं।

मुझे श्याम सुन्दर दास की ग्रंथावली कतिपय कारणों से अधिक प्रामाणिक लगती है, हिन्दी जगत् में उसकी स्वीकृत भी अपेक्षाकृत अधिक है। वैज्ञानिक पाठ निर्धारण में सबसे अधिक उपेक्षा लोक मानस में प्रतिष्ठित कबीर के पाठों की हुई है। लोक में कबीर की जो वाणी मौखिक परम्परा से चली आ रही है उसको शत-प्रतिशत शुद्ध तो नहीं माना जा सकता किन्तु उसकी मूल चेतना में कबीर की चेतना मौजूद है उसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। डॉ.माता

प्रसाद गुप्त, श्यामसुन्दर दास, डॉ.रामकुमार वर्मा, डॉ.पारसनाथ तिवारी, जयदेव सिंह, डॉ.शुकदेव सिंह आदि अनेक विद्वानों द्वारा संपादित कबीर के पाठ को हिन्दी के विद्वान् तथा प्रबुद्ध पाठक प्रामाणिक मानकर स्वीकार करते हैं। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर के परिशिष्ट में जो श्कबीर वाणी' को संकलित किया है उसमें लोक परम्परा भी अनुस्यूत है। मैंने 'कबीर ग्रंथावली' का संपादन उपर्युक्त ग्रंथों के आधार पर किया है। इसमें इस बात पर विशेष ध्यान रहा कि कोई भी परम्परा पूरी तरह उपेक्षित न रहें।

13

बीजक

'बीजक' कबीर वाणी का प्रामाणिक ग्रन्थ कहा जाता है। यह कबीर द्वारा ही लिखा गया है, इसमें सन्देह है। कबीर ने जिस भाषा और शैली में अपनी वाणी कही है, वह उनके साहित्यिक एवं शास्त्रीय निष्ठा का प्रमाण नहीं देती। कबीर की साखी यह कहती है-कबीर संसा दूर करु, पुस्तक देई बहाय।

और जनश्रुति यह कहती है कि मसि कागद छूयो नहीं, कलम गही नहिं हाथ। तब उन्होंने बीजक ग्रन्थ लिखा होगा, इसमें बहुत सन्देह होता है।

मौखिक उपदेश

कबीर ने तो अपने सिद्धान्त और उपदेश मौखिक रूप में ही दिये। उन्होंने सदैव 'कहै कबीर सुनो भाई सन्तो' ही कहा, 'लिखै कबीर पढ़ो भाई सन्तो' जैसी पंक्ति कभी नहीं लिखी। अतः जो वाणी उन्होंने कही, वह मौखिक रूप में ही प्रचारित हुई। यह बात अवश्य कही जा सकती है कि जो कुछ भी उन्होंने कहा, उसे उनके शिष्यों ने लिखा और कबीर के नाम से प्रचारित किया। यह भी सम्भव है कि शिष्यों की बहुत सी वाणी कबीर के नाम से ही प्रचारित हुई हो। यही कारण है कि आज कबीर के नाम से लगभग 61 ग्रन्थ मिलते हैं, जिनमें से काफी संख्या में ऐसे ग्रन्थों की है, जो कबीर के बाद लिखे गये और जिनमें उन सिद्धान्तों की चर्चा है, जिनमें बाह्याचार और कर्मकाण्ड का निरूपण विशेष रूप से हुआ। कबीर ने बाह्याचार और कर्मकाण्ड की सदैव ही निन्दा की। अतः वे ग्रन्थ कबीर द्वारा निर्मित नहीं हो सकते।

बीजक मूल ग्रंथ

कबीरपन्थियों तथा सामान्य पाठकों में श्बीजक' कबीर साहब के सिद्धान्तों का मूल ग्रन्थ माना जाता है। कहा जाता है कि कबीर की चोरी से उनका एक भक्त भगवानदास श्बीजक' की प्रति को ले भागा। कहते हैं बीजक लेकर भागने के कारण ही यह भगवानदास श्भग्गू' के नाम से निन्दित हुआ। श्बीजक' की टीका लिखने वाले श्विश्वनाथ सिंह जू देव' ने कबीर साहब के द्वारा कही गयी बीजक के सम्बन्ध में कुछ चौपाइयों का निर्देश किया है–

"भग्गूदास की खबरि जनाई। ले चरनामृत साधु पियाई।।
कोऊ आप कह कालिंजर गयऊ। बीजक ग्रन्थ चोराइ ले गयऊ।।
सतगुरु कह वह निगुरा पन्थी। काह भयौ लै बीजक ग्रन्थी।।
चोरी करि वै चोर कहाई। काह भयो बड़ भक्त कहाई।
बीजमूल हम प्रगट चिह्नाई। बीज न चीह्नो दुर्मीत लाई।।"

कबीरपन्थी श्महात्मा पूरन साहेब' ने कबीर साहब के मुख्य ग्रन्थ मूल बीजक की जो टीका लिखी है, उसके अनुसार श्बीजक' के निम्नलिखित ग्यारह अंगों का निर्देश और विस्तार निम्न प्रकार से दिया है–

'बीजक' शब्द तांत्रिक उपासना से सम्बद्ध ज्ञात होता है। बौद्ध तंत्र में जिन सूत्रों से रहस्यमय तत्त्व की उपलब्धि होती है, उन्हें 'बीज सूत्र' या 'बीजाक्षर' का नाम दिया गया। इसी 'बीजाक्षर' में मन्त्रों की सृष्टि मानी गयी। इस भाँति बीजाक्षर से शब्द तत्त्व का भी बोध हुआ। बौद्ध धर्म की वज्रयानी परम्परा से कालान्तर में सन्त सम्प्रदाय के स्रोत मिलते हैं। इस सन्त सम्प्रदाय में शब्द का बहुत महत्त्व है। सन्त सम्प्रदाय के काव्य में 'शब्द' और 'साखी' का विशिष्ट अर्थ और महत्त्व समझा जाता है। इसी 'बीजक' ग्रन्थ में 'रमैनी' (37) में 'बीजक' के सम्बन्ध में विवेचन किया गया है–

'एक सयान सयान न होई। दूसर सयान न जाने कोई।।
तीसर सयान सयान दिखाई। चौथे सयान तहाँ ले जाई।।
पचये सयान न जाने कोई। छठये मा सब गैल बिगोई।।
सतयाँ सयान जो जानहु भाई। लोक वेद मों देउ देखाई।।'
'बीजक वित्त बतावै। जो वित्त गुप्ता होय।
ऐसे शब्द बतावै जीवको। बुझे बिरला कोय।' –साखी

उपर्युक्त उद्धरण में 'बीजक' का सम्बन्ध 'शब्द' से ही जोड़ा गया है। सयान की मीमांसा निम्न प्रकार से समझी जा सकती है–

एक सयान–ब्रह्म,
दूसर सयान–माया,
तीसर सयान–त्रिगुण–(भक्ति, ज्ञान और योग),
चौथे सयान–चारों वेद,
पचयें सयान–पाँचों तत्त्व (आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी),
छठयें सयान–मन के दोष (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर),
सतयाँ सयान–शब्द।

इस भाँति श्बीजक' वास्तविक तत्त्व का बोधक है। यह तत्त्व संसार में गुप्त रहता है। श्बीजक' के द्वारा ही ब्रह्म के वास्तविक तत्त्व (शब्द) का बोध होता है, जिससे समस्त सृष्टि का निर्माण हुआ है।

बीजक का मुद्रण

कबीर की वाणियों में 'बीजक' का मुद्रण सबसे पहले हुआ। इसका कारण है कि कबीरपन्थी श्बीजक' को सर्वाधिक प्रामाणिक तथा आदरणीय ग्रन्थ मानते हैं। रीवा नरेश 'श्री विश्वनाथ सिंह' की टीका के साथ 'बीजक' 1872 ई. से पहले मुद्रित हुआ था। पादरी प्रेमचन्द, पूर्णदास, पादरी अहमदशाह, महर्षि शिवव्रत लाल, विचारदास, साधु लखन दास, हनुमान दास, भगवान साहब, गोस्वामी साहब, महाराज राघवदास, हंसदास आदि अनेक विद्वानों तथा सन्तों ने 'बीजक' का मूलपाठ टीका सहित सम्पादित करके प्रकाशित कराया है।

रमैनी, शब्द और साखी का यह क्रम किसी और 'कबीर वाणी' में नहीं, अपितु 'बीजक' में ही है। बीजक ही ऐसा ग्रन्थ है, जिसमें कबीर का क्रान्तिकारी स्वरूप पूर्ण रूप उभरा है।

बीजक पदों का गूढ़त्व और सूत्रत्व

बीजक में कबीर ने अपने नामवाची कबीर, कबिरा, कबीरा, कबिरन, कबीरन आदि अनेक शब्दों का प्रयोग किया है। ऐसा उन्होंने क्यों किया, स्पष्ट रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। कुछ टीकाकारों के ख्याल से ये शब्द एकार्थबोधक हैं और कबीर ने इन सबका प्रयोग अपने लिए ही किया है, केवल छन्द प्रवाह बनाये रखने के लिए मात्राओं में हेर–फेर है। कुछ अन्य टीकाकारों के ख्याल से उपरोक्त सभी शब्द भिन्न–भिन्न अर्थ बोधक हैं। परन्तु दोनों दृष्टि एकांगी हैं। उपर्युक्त सभी शब्द हर जगह कबीर के नाम एवं व्यक्तित्त्व से भिन्न

अर्थ रखते हैं, ऐसी बात नहीं है, परन्तु हर जगह इन सबका एक ही अर्थ किया जाए तो पूरे अर्थ की संगति ही नहीं बैठ सकती। उदाहरणार्थ–

भ्रमि भ्रमि कबिरा फिरै उदासय कबिरन ओट राम की पकरी,
अन्त चले पछिताईय कबिरन भक्ति बिगारिया,
कंकर पत्थर धोयय झूठा खसम कबीरन जानाय
कबिरा बनौरी गावैय तथा तामहँ भ्रमि-भ्रमि रहल कबीरा।

बीजक हमें बरबस ही सूत्र ग्रन्थों की याद दिलाता है, जिसमें छोटा-सा वाक्य बहुत बड़े अर्थगांभीर्य एवं भाव को छिपाए रहता है। बीजक में रूपक, प्रतीक, अन्योक्तिकथन, उलटवांसी शैली, कहीं पूर्वपक्ष की मान्यताओं का प्रदर्शन कराने के लिए कहे गये वचन आदि होने से हर सिद्धान्त के मानने को अपने दार्शनिक सिद्धान्त की स्थापना के लिए जगह मिल जाती है।

बीजक की अनेक टीकाएँ

देशी-विदेशी अनेक विद्वानों द्वारा बीजक को प्रामाणिक कबीर साहित्य मानकर उसकी अब तक दर्जनों टीकाएँ हो चुकी हैं तथा आज भी होती जा रही है। बीजक की अब तक हुई अनेक टीकाएँ ऐसी हैं, जिनकी भाषा-शैली पुरानी होने से वह आज सबकी समझ में ठीक से नहीं आती। कुछ में तो अर्थ अत्यन्त अस्पष्ट एवं भ्रामक हो गया है। और कुछ टीकाएँ तो ऐसी हुई हैं, जिनमें सारे पाखण्ड एवं कुरीतियों को जलाकर राख कर देने वाला कबीर का क्रान्तिकारी विदग्धात्मक रूप ही ओझल हो गया है और वहाँ पर कबीर को परम्परापोषित भक्तकवि बनाकर रख दिया गया है तथा उन्हें किसी अदृश्य, अज्ञात शक्ति के आगे गिड़गिड़ाने वाला भावुक भक्त बना डाला गया है।

❑❑❑